खंड-7 अंक-4
पौष-फाल्गुन-त्रैमासिक-2081 / जनवरी-मार्च, 2025

ISSN : 2581-7353
UGC Care List

संवाद पथ

जनसंचार एवं पत्रकारिता केंद्रित पत्रिका

पद्मभूषण डॉ. मोटूरि सत्यनारायण

(2 फरवरी, 1902 - 6 मार्च, 1995)

आंध्र प्रदेश के कृष्णा जिले के दोण्डपाडु ग्राम में जन्मे, केंद्रीय हिंदी संस्थान के संस्थापक, हिंदी सेवी, पद्मभूषण श्री मोटूरि सत्यनारायण जी भारतीय संविधान सभा के सदस्य के रूप में हिंदी को राजभाषा के पद पर आसीन करवाने वालों में से थे।

RNI No. DEL HIN/2018/75997 ISSN: 2581-7353

यू. जी. सी केयर लिस्ट

संवाद पथ

जनसंचार एवं पत्रकारिता केंद्रित पत्रिका

खंड-7 अंक-4 पौष-फाल्गुन 2081/त्रैमासिक/जनवरी-मार्च वर्ष-2025

संरक्षक

प्रो. सुरेंद्र दुबे

उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा
ई-मेल : vcoffice@gmail.com

परामर्श मंडल :

श्री बल्देव भाई शर्मा

पूर्व अध्यक्ष, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत
ई-मेल : baldev.bhai.sharma@gmail.com

डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण

निदेशक, के.के. बिड़ला फाउंडेशन, नई दिल्ली
ई-मेल : rituparna.suresh@gmail.com

डॉ. प्रेम जनमेजय

संपादक-व्यंग्य यात्रा
ई-मेल :

श्री बालेंदु शर्मा दाधीच

हिंदी तकनीकी विशेषज्ञ
ई-मेल : balendu@gmail.com

प्रधान संपादक

प्रो. सुनील बाबुराव कुळकर्णी

निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा,
ई-मेल : directorkhs1960@gmail.com

संपादक

प्रो. योगेंद्र कुमार,

विभागाध्यक्ष, अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग
केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली केंद्र
ई-मेल : rdkhsamd@gmail.com

डॉ. ऋचा गुप्त

सहायक प्रोफेसर, केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली केंद्र
ई-मेल : richagkp1983@gmail.com

प्रकाशन प्रबंधक

डॉ. निरंजन सिंह

केंद्रीय हिंदी सस्थान, आगरा,

ई-मेल : Publication managerkhs@gmail.com

सहयोग

श्री वीरेन्द्र कुमार

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार)

दिल्ली केंद्र

जनसंचार एवं पत्रकारिता केंद्रित त्रैमासिक पत्रिका-संवाद पथ
खंड-7 अंक-4 पौष-माघ-फाल्गुन 2081 जनवरी-मार्च, 2025
© : सचिव, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा
प्रकाशक : कुल सचिव, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

संपादकीय कार्यालय : क्षेत्रीय निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली केंद्र
बी-26 ए, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया,
शहीद जीतसिंह मार्ग, नई दिल्ली-110016
फोन : 011-26537121, 26537123
ई-मेल : samvadpathkhsdelhi@gmail.com
khsdelhi16@gmail.com

सदस्यता शुल्क : व्यक्तिगत प्रति अंक रु.40/-, वार्षिक सदस्यता रु. 150/-
संस्थागत वार्षिक शुक्ल रु. 250/-
(डाक व्यय प्रति अंक रु. 35/- तथा वार्षिक रु. 100/- अतिरिक्त)
विदेशों में प्रति अंक $ 10.00 वार्षिक $ 40.00

आवरण : ऐजुकेशनल स्टोर्स, एस-5 बुलन्दशहर रोड इण्डस्ट्रीयल एरिया, साईट-1
गाजियाबाद (उ.प्र.)-201009

मुद्रक : ऐजुकेशनल स्टोर्स, एस-5 बुलन्दशहर रोड इण्डस्ट्रीयल एरिया, साईट-1
गाजियाबाद (उ.प्र.)-201009

स्वामित्व : सचिव, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा

इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से केंद्रीय हिंदी संस्थान
का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु स्वामी एवं प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।

अनुक्रम

संपादकीय

1.	वनवासी समाज का नेरेटिव और हिंदी सिनेमा	डॉ. दीपक शर्मा	7
2.	जनजाति ज्ञान के संदर्भ में देशज संचार का स्वरूप	डॉ. वैभव उपाध्याय अनुज कुमार सिंह,	12
3.	स्वतंत्रता आंदोलन में पूर्वांचल की ग्रामीण पत्रकारिता (जासूस पत्रिका के विशेष सन्दर्भ में)	विवेक कुमार, प्रो. मनीष शर्मा	19
4.	नवजागरण और भारतेंदुयुगीन पत्रकारिता	डॉ. दीनदयाल	28
5.	2024 लोकसभा चुनाव अभियान के दौरान सोशल मीडिया पर राजनीतिक विमर्श	डॉ. तुंगनाथ मौआर	32
6.	पत्रकारिता की पाठशाला में भारतेंदु मण्डल का प्रशिक्षण	डॉ. अभिषेक कुमार मिश्र	43
7.	भारतीय सामाजिक संस्कृति एवं वेब सीरीज विसंगतियाँ	कुलदीप कुमार, डॉ. रचना गंगवार	49
8.	मीडिया में समाचार एजेंसियों की भूमिका	डॉ. रूपचन्द गौतम	60
9.	फेक न्यूज का सामाजिक प्रभाव और उसके समाधान	पूनम कुमारी, डॉ. विजेता तनेजा	65
10.	हिंदी समाचार पत्रों के शीर्षकों में नकारात्मक ध्रुवीय पद का अर्थपूर्ण-सांकेतिक विश्लेषण	इरम अलि अहमद	73
11	डिजिटल पत्रकारिता में हिंदी का योगदान	नितेश उपाध्याय	80
12.	सत्यजित रे के सिनेमा में मानवता व सत्य की तलाश	शालू	84
13.	ग्लोबल गाँव में बाजार मीडिया और साहित्य	डॉ. रहीम मियाँ	90
14.	दलितों के प्रति बढ़ती हिंसा और मीडिया की भूमिका	डॉ. हंसराज 'सुमन'	94
15.	सोशल मीडिया पर लोकप्रिय छत्तीसगढ़ी पंथी लोकगीतों के संदेश	रमन दास, डॉ. अमित कुमार	98
16.	स्वास्थ्य संचार उपकरण के रूप में सोशल मीडियाः फेसबुक पर हरियाणा की चिरायु आयुष्मान भारत योजना का एक अध्ययन	सुरक्षा यादव, डॉ. पद्मिनी जैन	105

आमुख

वर्तमान में देश की राष्ट्रीय राजनीति में नई शिक्षा नीति-2020 के अंतर्निहित त्रिभाषा सूत्र को लेकर केंद्र और तमिलनाडु सरकार के मध्य छिड़ा विवाद समाचार पत्र एवं मीडिया की सुर्खियों में है। वस्तुतः विवाद का मूल कारण राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 के तहत त्रिभाषा सूत्र को अपनाने से इनकार करने पर समग्र शिक्षा योजना के तहत तमिलनाडु को दी जाने वाली 2,150 करोड़ रूपये की धनराशि का आवंटन केंद्र सरकार द्वारा रोक दिया जाना है। कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि नई शिक्षा नीति-2020 के तहत त्रिभाषा सूत्र के संबंध में केंद्र और तमिलनाडु सरकार के मध्य जो विवाद उत्पन्न हो गया है वह समाप्त होने का नाम नहीं ले रहा। त्रिभाषा सूत्र में हिंदी को अनिवार्य करने पर तमिलनाडु सरकार का केंद्र पर सीधा-सीधा आरोप है कि वह जबरदस्ती उन पर 'हिंदी थोपना' चाहता है। केंद्र के लाख समझाने पर भी तमिलनाडु सरकार अपने इस निश्चय पर अड़ी हुई है कि वह त्रिभाषा सूत्र में प्रस्तावित हिंदी भाषा की अनिवार्यता को किसी भी कीमत पर स्वीकार नहीं करेगी और इसके लिए वह कोई भी कीमत चुकाने को तैयार है। इस संबंध में काबिलेगौर तथ्य यह है कि इस विषय में केंद्र सरकार द्वारा तमिलनाडु सरकार से बार-बार आग्रह किया गया है कि नई शिक्षा नीति-2020 में निर्दिष्ट त्रिभाषा सूत्र में ऐसा कुछ भी नहीं है जो तमिल अस्मिता व संस्कृति को किसी भी तरह से क्षति पहुँचाता हो।

नई शिक्षा नीति-2020 के पक्ष-प्रतिपक्ष में जारी बहस पर शीघ्र तो कोई विराम लगता हुआ दिखाई नहीं दे रहा प्रत्युत इसके विपरीत तामिलनाडु सरकार समय-समय पर इस विषय के संबंध में नित नये दावे, अपने पक्ष में प्रस्तुत कर रही है। वह अपने दावे के पक्ष में तर्क देते हुए कह रही है कि तमिलनाडु शिक्षा बोर्ड की पाठ्यचर्या को अपनाने वाले हजारों निजी विद्यालयों द्वारा त्रिभाषा सूत्र का अनुपालन नहीं किया जा रहा है। हिंदी वहाँ अनिवार्य नहीं है और हिंदी की परीक्षाएँ भी वहाँ नहीं होतीं। इस विषय पर तमिलनाडु सरकार की ओर से एक दलील यह भी पेश की जा रही है कि जब लंबे समय से दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार सभाएँ हिंदी शिक्षण का कार्य करती रही हैं तब उत्तर भारत में दक्षिण भारतीय भाषाओं के शिक्षण की व्यवस्था करने के लिए अब तक किसी संस्था की स्थापना उसके द्वारा क्यों नहीं की गई है।

सोशल मीडिया बहस में तमिलनाडु सरकार केंद्र पर यह आक्षेप लगाने से भी पीछे नहीं रही है कि 'एकल हिंदी पहचान' के प्रयास ने अनेक प्राचीन मातृभाषाओं के अस्तित्व को समाप्त कर दिया है अर्थात हिंदी उन्हें निगल चुकी है। तमिलनाडु सरकार द्वारा उन मातृभाषाओं के नामों की एक लंबी सूची भी गिनाई है जो अपनी जीवन लीला की अंतिम साँसे ले रही हैं। इसमें मुख्यतः भोजपुरी, मैथिली, अवधी, ब्रज, बुन्देली, गढ़वाली, कुमाऊँनी, मगही, खड़िया, कार्था कुर्माली, कुरुकू, मुंडारी, आदि के नाम शामिल हैं।

इसे विडम्बना ही कहा जाएगा कि वर्तमान विवाद किसी सार्थक और सकारात्मक सुलह की दिशा में अग्रसर होने की अपेक्षा एक राजनीतिक वितंडा का रूप धारण करता हुआ दिखाई दे रहा है। इस विषय में बस इतना ही कहा जा सकता है कि तमिलनाडु सरकार नई शिक्षा नीति-2020 के त्रिभाषा सूत्र के संबंध में अपनी इस भ्रांतधारणा को निर्मूल करे कि द्रविडों के अस्तित्व एवं उसकी सांस्कृतिक विरासत को नष्ट करने का केंद्र सरकार का कोई षड्यंत्र है या फिर हिंदी को उन पर जबरदस्ती थोपा जा रहा है।

नई शिक्षा नीति-2020 व त्रिभाषा सूत्र का न्यायसंगत दृष्टि से अवलोकन करने पर उनकी यह भ्रांत धारणा अवश्यमेव निःशेष होगी कि किसी भी मायने में देश के प्रदेश विशेष अर्थात हिंदीतर प्रांतों की अस्मिता व संस्कृति को क्षति पहुँचाने की मंशा से इसकी रचना नहीं हुई है। नई शिक्षा नीति-2020 में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है- पिछली शिक्षा नीतियों के विपरीत नई शिक्षा नीति-2020 में हिंदी का कोई उल्लेख नहीं है। नीति में कहा गया है कि ''बच्चों द्वारा सीखी जाने वाली तीन भाषाएँ राज्यों, क्षेत्रों और निश्चित रूप से छात्रों की अपनी पसंद होगी, बशर्ते कि तीन भाषाओं में कम से कम दो भारत की मूल भाषाएँ हों।"

इस तथ्य से कोई इनकार नहीं कर सकता कि पूर्ववर्ती नयी शिक्षा नीति-1986 की तुलना में नई शिक्षा नीति-2020 में अनेक ऐसी सिफ़ारिशें की गईं हैं जिनके संबंध में इससे पहले न तो कभी विचार किया गया है और न ही कभी सोचा गया है। कई अर्थों में यह क्रांतिकारी है। भारतीय भाषा समिति का गठन व भारतीय भाषाओं के प्रोन्नयन एवं ऊर्ध्वमुखी विकास को सुनिश्चित करने हेतु भारतीय भाषाओं के अंतरराष्ट्रीय स्तर के विश्वविद्यालय की स्थापना का विचार इसकी नवीनतम उपलब्धियाँ हैं। लुप्तप्रायः भाषाओं के साहित्य का संरक्षण करने की योजना का महत्व तब और प्रासंगिक हो जाता है जब जलवायु परिवर्तन से उद्भूत प्राकृतिक आपदाएँ समूह के समूह मानव भू-भागों को निगलती चली जा रही हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में लुप्तप्रायः भाषाओं का संरक्षण अर्थात् उनका डिजिटलीकरण व दस्तावेजीकरण, एक पूरी सांस्कृतिक विरासत को भविष्य की पीढ़ी के लिए हमारा एक पुनीत अवदान सिद्ध होगा।

(प्रो. सुनील बाबबुराव कुळकर्णी)

निदेशक

संपादकीय

स्वाधीनता के 75 वर्ष पूर्ण कर चुका भारत वर्तमान में भले हो एक वैश्विक भू-रणनीतिकार देश के रूप में दुनियाभर में जाना जा रहा हो और इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि आगामी दशकों में वह विकासशील भारत की सीमा का अतिक्रमण कर 'विकसित भारत' (सन 2047) के महोदधि का अधिपति कहलाने का गौरव भी प्राप्त कर लेगा। लेकिन दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र की स्वर्णिम आभा व गरिमा तब-तब कलुषित होती दिखती है जब हम राष्ट्रीय समाचार-पत्रों व सोशल मीडिया पर देश के विभिन्न राज्यों में स्त्रियों और अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के विरुद्ध जातीय हिंसा व उत्पीड़न की नृशंस घटनाएँ समाज में होते हुए देखते हैं। देश में संवैधानिक कानून व्यवस्था और पर्याप्त आंतरिक सुरक्षा तंत्र मौजूद होने के के बावजूद बेखौफ ऐसी घटनाएँ घट रही हैं। कितने दुर्भाग्य की बात है कि आज भी समाज में स्त्रियों और अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के प्रति असहिष्णुता व गैर-बराबरी की कुत्सित मनोवृत्ति विद्यमान है।

वर्तमान में स्त्री एवं दलित उत्पीड़न की घटनाओं का परिदृश्य निराशा और विक्षोभ ही उत्पन्न करता है। पितृ सत्तात्मक व्यवस्था में स्त्रियाँ नाना प्रकार के पुरुष वर्चस्ववादी उत्पीड़न, रूढ़ियों व वर्जनाओं का शिकार होती हैं। उसका पुरुष के अधीन होना तथा उसके यौवनत्व पर पितृसत्ता का पूर्ण नियंत्रण ही उसकी दासता का प्रमुख कारण है।

अनुसूचित जातियों के विरुद्ध देश के विभिन्न राज्यों में घटित हिंसा और उत्पीड़न की घटनाओं पर प्रकाशित सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार की वर्ष 2022 की रिपोर्ट बताती है कि अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के विरुद्ध हुई हिंसा व उत्पीड़न के क्रमशः कुल 97.7% एवं 98.91% दर्ज मामले अकेले 13 राज्यों से संबंध रखते हैं जिसमें उत्तर प्रदेश, राजस्थान और मध्य प्रदेश में दर्ज मामलों की संख्या सर्वाधिक है। मंत्रालय की रिपोर्ट में सर्वाधिक चिंताजनक तथ्य दलित विरोधी हिंसा व उत्पीड़न के विरुद्ध दर्ज मामलों की 'दोष सिद्धि' दर में सतत् कमी आना है। अर्थात वर्ष 2020 में जो 'दोष सिद्धि' दर 39.2% थी वह वर्ष 2022 में घटकर 32.4% रह गई।

कहावत है, ''देर से न्याय मिलना, न्याय से वंचित करना है।'' आज से 44 वर्ष पूर्व देहुली (मैनपुरी) उ.प्र. में 18 मार्च 1981 के दलित नरसंहार पर आया 12 मार्च 2025 का सत्र न्यायालय का निर्णय इसका ज्वलंत उदाहरण है। ध्यातव्य हो कि इस नर संहार को पुलिसवर्दीधारी राधे व संतोषा दस्यु गिरोह के 17 सदस्यों ने अंजाम दिया था। जिसमें 27 दलितों को पुलिस मुखबिरी के शक में दिन-दहाड़े गोली से उड़ा दिया गया था। अपने फैसले में सत्र न्यायलय ने इस हत्याकांड को 'दुर्लभ से दुर्लभतम्' श्रेणी का माना है। इस हत्याकांड में 07 महिलाओं सहित एक छः माह के दुधमुँहे शिशु और दो वर्षीय बच्चों की भी निर्ममता

से गोली मारकर हत्या कर दी गई थी। चार दशक से भी लम्बी चली न्यायिक कार्यवाही के दौरान हत्याकांड के 60 वर्षीय तीन अभियुक्तों को मृत्युदंड दिया गया है। 20 में से 14 अभियुक्त अब इस दुनिया में नहीं हैं और अन्य कुछ अभी भी फरार हैं।

हाल ही में घटित स्त्री और दलित विरोधी हिंसा व उत्पीड़न की दो घटनाओं ने एक बार फिर भारतीय गणतंत्र को शर्मसार करने का काम किया है।

लुधियाना के औद्योगिक क्षेत्र की एक फैक्ट्री में काम करने वाली महिला और उसकी तीन बेटियों को चोरी के शक की बिना पर फैक्ट्री मालिक ने चारों माँ बेटियों का मुँह काला करवाकर, हाथों में "मैं चोर हूँ" की तख्ती थमाकर पूरे औद्योगिक क्षेत्र में घुमाया। यहाँ सवाल यही उठता है कि जब देश में उचित न्यायिक व्यवस्था मौजूद है तब फैक्ट्री मालिक को कानून को अपने हाथों में लेने का हक किसने दे दिया?

इसी प्रकार पटना (बिहार) के फुलवारी शरीफ निर्वाचन क्षेत्र की घटना 26 जनवरी 2025, गणतंत्र दिवस के दिन की है जहाँ दबंग जाति के उपद्रवियों की भीड़ द्वारा निर्वाचित दलित विधायक गोपाल रविदास को उन्हीं के प्रयास से बने नये विद्यालय भवन का उदघाटन नहीं करने दिया तथा ध्वजारोहण करने से भी रोक दिया गया। वहाँ उपस्थित दबंग जाति के स्थानीय लोगों ने उन्हें जातिसूचक शब्दों से भी अपमानित किया। किसी बड़ी हिंसा की आशंका को भाँपते हुए विधायक गोपाल रविदास ने तत्काल उस स्थान को छोड़ कर चले जाने में ही अपनी भलाई समझी।

अतः वर्तमान की ये दो घटनाएँ इस बात का साक्ष्य है कि आज भी समाज में स्त्रियों व दलितों के प्रति पितृ सत्तात्मक हिंसा-उत्पीड़न एवं गैर बराबरी की मनोवृत्ति कायम है। दीगर बात है कि दलितों के प्रति शहरों में जातिगत भेदभाव प्रत्यक्ष रूप में भले ही न देखने में आता हो लेकिन प्रच्छन्न रूपों में वह विद्यमान रहता है। देश के प्रतिष्ठित शिक्षा संस्थानों में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के विद्यार्थियों के जातीय उत्पीड़न की घटनाएँ प्रेस व मीडिया के जरिये उजागर हो ही जाती हैं, चाहे वह रोहित वैमुला और पायल तड़वी की आत्महत्या का मामला हो या आई आई टी दिल्ली के दो छात्रों आयुष आश्ना और अनिल कुमार का क्रमशः 08 जुलाई 2023 व 01 सितंबर 2023 को अपने हॉस्टल के कमरे में मृत पाया जाना। यह हकीकत है कि ग्रामीण परिवेश में जाति भेद आज भी अपनी अर्वाचीन सांमती दर्प प्रवृत्ति के वशीभूत दलितों को असमता आधारित चातुर्वण्य व्यवस्था के अधीन दास बनाये रखने की मंशा से किसी भी प्रतिरोधी आवाज़ का मुँह बंद करने के लिए देश में यहाँ-वहाँ खुले आम बेखौफ दलित विरोधी हिंसा व हत्या की घटनाओं को अंजाम देने में पीछे नहीं रहता।

स्त्री एवं दलित उत्पीड़न का इतिहास जितना पुराना है उतना ही पुराना इतिहास इस शोषण व उत्पीड़न के उन्मूलन हेतु संचालित आंदोलनों का भी रहा है। दक्षिण में नारायण गुरु, ई. वी. रामस्वामी पेरियार, महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिबा फुले व सावित्री बाई फुले और बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर के नेतृत्व में चला जाति उन्मूलन आंदोलन इतिहास में एक अप्रतिम उदाहरण हैं।

पूँजीवादी विचारधारा व्युत्पन्न प्रगतिशील मूल्य संवलित शहरी अभिजन और बुद्धिजीवी परिवारों में आर्थिक स्वतंत्रता और अंतर्जातीय विवाह के कारण कुछ हद तक स्त्रियाँ आर्थिक रूप से स्वतंत्र होकर अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण फैसले स्वयं लेने लगी हैं जिसने जातिभेद पर आधात कर उसे उदार और शिथिलता प्रदान करने में योगदान किया है।

अनुसूचित जातियों में महार जाति का होने के कारण बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर ने आजीवन एक से बढ़कर एक जातीय अपमान, भेदभाव व उत्पीड़न झेला जिसके परिणामस्वरूप जीवन की अंतिम साँस तक 'जाति विनाश हेतु वे संघर्षरत रहे। बकौल ख्यात इतिहासविद सुवीरा जायसवाल, ''जाति विषयक मानसिकता को उसके भौतिक आधार से अलग करके नहीं देखा जा सकता। जरूरत है ऐसे विवेकपूर्ण सशक्त आंदोलन की जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी स्तरों पर जातिगत परंपराओं के समूल उन्मूलन का बीड़ा उठाये, जाति का उसके अभिजन वर्ग के हित के रूप में उपयोग की राजनीति का पर्दाफाश करे, पितृ सत्तात्मक मूल्यों का अवमूल्यन कर नारी को स्वाधीनता और स्वतंत्र चयन का अधिकार दे और सही मायनों में वर्चस्वहीन समाज की स्थापना का प्रयास करे। तभी बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर का विजन 'जाति का विनाश' साकार हो सकता है।''

संपादक

वनवासी समाज का नैरेटिव और हिंदी सिनेमा

डॉ. दीपक शर्मा

भारत में जनसंख्या का एक बहुत बड़ा फलक वनवासियों से संबंधित है। वनवासी शब्द से आज कोई भी अपरिचित नहीं है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'मूलनिवासी' (आदिवासी)। संस्कृत ग्रंथो की बात की जाए तो उसमें वनवासियों को 'वनवासी' भी कहा गया है। हिंदुओं के आदिपुरुष भगवान शिव को भी पहाड़ों एवं जंगलों में रहने के कारण अनेक विचारकों ने वनवासी ही माना है। यद्यपि भगवान शिव हिंदू धर्म में पूजनीय माने गए हैं। भारतीय संविधान की चर्चा करें तो पाँचवी अनुसूची में वनवासियों को 'अनुसूचित जनजाति' के रूप में परिगणित किया गया है जिनकी जनसंख्या मिजोरम, नागालैंड, मेघालय, अरूणाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, राजस्थान इत्यादि राज्यों में मिलती है। अब प्रश्न यह उठता है कि वनवासी कहा किसे जाए? केवल जंगलों में रहने वाले को ही वनवासी कहा गया तो यह धारणा वनवासियों के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लगाती है। लेकिन यह तथ्य पूर्णतः सत्य है कि वनवासी, प्रकृति के पुजारी और जल-जंगल-जमीन से सीधे-सीधे जुड़े हुए हैं। इनके अपने निजी कानून और पंचायतें भी होती हैं। जिस जल-जंगल-जमीन का अभी हमने उल्लेख किया है उस पर अपना पूर्ण नियंत्रण ये रखते हैं। उसकी सुरक्षा और संरक्षण की खातिर प्राणों की बाजी तक लगा देते हैं। ऐसी अनेक मिसालें इतिहास में हैं। लेकिन आज अनेक विदवानों ने इस वनवासी शब्द का अर्थ-विस्तार करते हुए उन समुदायों को इसके अधीन कर दिया है जिन्हें हमारे संविधान ने 'अनुसूचित-जाति' माना है जिसके परिणाम स्वरूप संविधान में परिभाषित अनुसूचित जनजाति की मूल अवधारणा का विलोप करके बड़ी चालाकी के साथ दलित-विमर्श की राह पर इसे धकेला जा रहा है। यह वनवासी अस्मिता की पहचान को खत्म करने का एक षड्यंत्र है।

हमारा मस्तिष्क जब भी देश की वनवासी अस्मिताओं की मूल समस्याओं से संबंधित कुछ सार्थक पढ़ने-लिखने की तरफ अग्रसर होता है तब हमें बहुधा 'वनवासी-विमर्श' के नाम पर दलित-विमर्श के ही दर्शन होते हैं। यहाँ तक कि इस संदर्भ में हम जनमाध्यमों के लोकप्रिय माध्यम सिनेमा के परिदृश्य में भी कुछ सार्थक फ़िल्में देखना चाहते हैं तो वहाँ भी वैसी ही स्थिति है। इंटरनेट पर भी यही सब देखने को मिलता है। कहना होगा कि यहाँ हम अपने इस वनवासी-समाज से संबंधित अध्ययन को सिनेमा के क्षेत्र तक ही सीमित रखने का प्रयास करेंगे। हम यह अकसर सुनते रहे हैं कि साहित्य और सिनेमा समाज का दर्पण होते हैं। समाज की नब्ज़ को पकड़कर उसकी अभिव्यक्ति करना दोनों ही विधाओं का प्राथमिक धर्म है। साहित्य में तो हमें वनवासी-विमर्श की सशक्त उपस्थिति दिखाई देती है लेकिन सिनेमा में आज भी इस स्तर पर बहुत गुंजाइश दिखाई देती है। आज ऐसे समय में जब भारतीय सिनेमा एक पूरी शताब्दी की यात्रा तय कर चुका है, ऐसे में सामाजिक ताने-बाने से सबको परिचित करवाने की इसकी यह जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है। कारण स्पष्ट है कि सिनेमा से समाज का हर वर्ग, धर्म, समुदाय, अपनी प्रारंभिक अवस्था से

ही जुड़ जाता है और अंतिम समय तक जुड़ा रहता है। इसकी पहुँच उस निरक्षर व अर्धशिक्षित तक भी है जिसका संपर्क सीधे तौर पर साहित्य और उसमें निहित गंभीर विमर्शों से नहीं है। यद्यपि इसमें कोई दो राय नहीं है कि सिनेमा का जन्म लोगों के मनोरंजन एवं बाज़ार के प्रसार हेतु किया गया था। मुनाफे का अर्थशास्त्र सिनेमा को अपने साथ लिए चलता है। ऐसे में जब हम सिनेमा से सामाजिक प्रतिबद्धता की उम्मीद करते हैं तो यह हमारे द्वारा सिनेमा के ऊपर डाली गयी एक अतिरिक्त जिम्मेदारी होती है जिसका निर्वाह सिनेमा को करना ही पड़ता है। क्योंकि कोई भी सिनेमा समाज-निरपेक्ष नहीं हो सकता है। टेलीविजन की अपेक्षा सिनेमा अधिक सामाजिक प्रतिबद्धता वाला माध्यम माना जाता है। जहाँ तक प्रतिबद्धता का प्रश्न है तो यह जन माध्यम या विधा से अधिक उसके नियंता व निर्माताओं पर निर्भर करता है।

अकसर लोगों को सिनेमा से यह शिकायत रही है कि अपने सौ वर्षों की यात्रा पूर्ण करने के बाद भी हमें आज तक ऐसी दस फ़िल्में नहीं उपलब्ध करवा सका है, जिन्हें हम सही मायनों में वनवासियों की समस्याओं से संबंधित फ़िल्म कह सकें। भारत में प्रतिवर्ष 1500 से 2000 फ़िल्में लगभग 20 भाषाओं में बनती हैं लेकिन ऐसी 10 फ़िल्में भी नहीं है जो वनवासियों की मूल समस्याओं से वास्ता रखती हों। यद्यपि हमारे सिनेमा में वनवासियों को लेकर अनेक फ़िल्में बनी हैं लेकिन इन फिल्मों में उनकी उपस्थिति का लक्ष्य, उनकी समस्याओं को उजागर करना न होकर, उनका नग्न एवं भौंडा प्रदर्शन करना ही रहा है। आज भी जब आप किसी बच्चे या युवक से वनवासियों की छवि के बारे में पूछोगे तो अधिकांश का जवाब यही होगा 'जो 'अजीब-से कपड़ों में, अजीब-सी हरकते करते हुए, अजीब सी भाषा में बात करते हैं' वही वनवासी होते हैं। ऐसा ही कुछ मेरा भी अनुभव रहा है जब मुझे वनवासियों से संबंधित एक शोध पत्र तैयार करना था। प्रश्न यह उठता है कि हम सभी के मन-मस्तिष्क में वनवासियों की यह छवि बनाई किसने है? इसके प्रत्युत्तर में कहा जा सकता है मीडिया मीडिया में भी विशेषकर हमारे सिनेमा ने। हम अकसर देखते हैं कि हिंदी फिल्मों में वनवासियों का या तो असभ्य चित्र प्रस्तुत किया जाता है या फिर आदिम-बर्बर रूप में प्रस्तुतीकरण जिसके पास न तो भाषा है और न ही सभ्य पोशाक। पेड़ों पर इधर-उधर लटकने वाले 'मोगली' टाइप पुरुष और वनवासी युवतियों की अर्ध नग्न देह पर फोकस करते हुए फिल्मों के कैमरे ही हमारा यह नजरिया बनाते हैं। फ़िल्में ही हमें दिखाती हैं कि यह प्रकृति के उपासक वनवासी अजीब से रीति-रिवाज़ का अनुपालन करते हुए तथा 'हुगा लाला हू हू'.. बोलते हुए अपने एक अजीब से देवता की पूजा-अर्चना करते हैं। यह सच भी है कि वनवासियों का रहन-सहन और आचार-विचार तथाकथित सभ्य समाज से भिन्न होता है तभी तो उन्हें वनवासी कहा जाता है। क्यों फ़िल्में यह नहीं दिखाती कि जंगल में प्रवेश करने पर शहरी नायक-नायिका को ये वनवासी इसलिए कैद कर लेते हैं क्योंकि उन्हें अपने जंगल के छिन जाने का डर दिन-रात उन्हें सताये रहता है। क्यों ये फ़िल्में वनवासियों के यथार्थ जीवन के संघर्षं को स्थान नहीं देतीं? अपने जंगल और जमीन को बचाने लिए किये जा रहे संघर्ष को ये फिल्में विस्मृत कर इन्हें भौंडे व फूहड़ हास्य (मनोरंजन) का पात्र बना डालती हैं।

हिंदी सिनेमा में एक नैरेटिव गढ़ा है कि वनवासी या तो असभ्य होते हैं या नक्सली। अतः हिंदी सिनेमा के लिए 'वनवासी' शब्द मात्र दर्शकों का मनोरंजन करने के उद्देश्य से इस्तेमाल में लाये जाने वाले एक सस्ते उत्पाद (वस्तु) से ज्यादा कुछ नहीं है। प्रश्न उठना लाजिमी है कि आखिर इस प्रकार के नजरिय को सालों से हमारे सिनेमा ने क्यों अपनाया हुआ है?

हाँ, ऐसा कार्य केवल कला-फिल्मों तथा डोक्युमेंट्री के माध्यम से ही संभव हो सकता है लेकिन अफ़सोस की बात यह है कि इन कला फिल्मों की पहुँच बहुत सीमित वर्ग तक ही होती है। **'वैली ऑफ़ गोट्स'** केरला के पलक्कड़ जिले के 'इरुला' वनवासी-समाज की जीविका पर आधारित प्रसिद्ध डोक्युमेंट्री

है। जिस तरह की संवेदनशीलता की दरकार मुख्य धारा के फिल्म उद्योग से की जाती है वह हमें वैकल्पिक सिनेमा में दिखाई देती है। अपने अध्ययन को अधिक स्पष्टता से समझने के लिए हम इसे दो भागों में विभाजित कर देते हैं- पहला, बीसवीं शताब्दी के हिंदी सिनेमा में वनवासी समाज तथा दूसरा, इक्कीसवीं शताब्दी के हिंदी सिनेमा में वनवासी समाज।

बीसवीं शताब्दी के सिनेमा में वनवासी समाज के जीवन चरित्र का उद्घाटन करने वाली फिल्मों में सर्वप्रथम **'अछूत कन्या' (1936)** का नाम लिया जाता है, जिसमें मुख्य भूमिका अशोक कुमार और देविका रानी ने निभाई थी। इसके बाद **'सुजाता (1956), 'मृगया' (1976), 'द नक्सलाइट' (1980) 'सती' (1981), 'गिद्ध' (1984), 'दामुल' (1985), बैंडिट क्वीन' (1994)** इत्यादि फिल्मों का नाम लिया जाता है। लेकिन कहना होगा कि जिस 'अछूत-कन्या' फ़िल्म का नाम सबसे पहले वनवासी समस्या के संदर्भ में लिया जाता है। वह मुख्यतः जातिगत छुआछूत से संबंधित फ़िल्म है जबकि वनवासी समस्या इससे बिलकुल भिन्न है। इस फ़िल्म को दलित-विमर्श से संबंधित पहली हिंदी फ़िल्म कहा जाना चाहिए। वनवासी-समस्याओं से संबंधित फिल्मों के क्रम में मृणाल सेन द्वारा निर्देशित फ़िल्म **'मृगया'** (1976) एक सकारात्मक पहल मानी जा सकती है जिसमें मिथुन चक्रवर्ती मुख्य नायक की भूमिका में हैं। वस्तुतः यह फ़िल्म भगवतीचरण पाणिग्रही की कहानी पर आधारित है जिसमें प्रतीकात्मक रूप में 1920 के भारत के एक वनवासी गाँव को 'नायक' के चरित्र में प्रस्तुत किया है जो औपनिवेशिक शासन के दोहरे शोषण के चक्र (ब्रिटिश और महाजन) को में दर्शाती है। फ़िल्म की शुरुआत में ही वन-सूअरों द्वारा सारी खेती को नष्ट कर दिए जाने के दृश्यों को दिखाया जाता है तो पूरे गाँव में यह तनाव पसर जाता है कि महाजन तो अपना हिस्सा लेकर रहेगा और ब्रिटिश सरकार से भी कोई आस नहीं है। गाँव के एक व्यक्ति द्वारा यह कहना कि ''जैसा जानवर वैसा महाजन... हमारी मुसीबत कौन समझेगा???? दोनों ही बर्बाद करने पर तुले हैं....'' तमाम उन वनवासियों के दर्द व बेबसी को सटीकता से व्यक्त करने का माद्दा रखता है जो हिंदी फिल्मों में नदारद है। आज भी विभिन्न बहुराष्ट्रीय निगम वनवासियों की एकमात्र संपत्ति 'जल-ग्रस्त जंगल-जमीन' को हथियाने की जुगत में हैं जिससे वनवासियों का अस्तित्व ही संकटग्रस्त हो गया है। जल-जंगल-जमीन के अलावा इनका और है ही क्या? हमें आज यह सोचने की ज़रूरत है कि इनसे इनके जल-जंगल-जमीन को छीनने से पहले हमें उन्हें उसका विकल्प प्रदान करना होगा। जैसा कि 'मृगया' फ़िल्म में भी दिखाने की कोशिश रही है कि घिनुआ (मिथुन चक्रवर्ती) अपने और गाँव के हक के लिए सत्ता तंत्र के शोषण दमन-उत्पीड़न के विरूद्ध संघर्ष करता है। लेकिन अतः में राज्य व्यवस्था द्वारा एक नक्सलवादी या आतंकी घोषित कर सलाखों के पीछे डाल दिया जाता है। उल्लेखनीय है कि बीसवीं शताब्दी के हिंदी सिनेमा में वनवासी जीवन की त्रासदी को प्रस्तुत करने वाली यह एकमात्र फिल्म है जो अनेक स्तरों पर हमें सोचने पर मजबूर करती है।

आधुनिक दलित विमर्श में जिस प्रकार से दलितों में भी दलित 'स्त्री' को कहा जाता है उसी प्रकार वनवासियों में भी सर्वाधिक उपेक्षित स्त्रियाँ ही रहीं हैं। कम से कम हिंदी सिनेमा तो हमें यही दिखाता है। हिंदी सिनेमा हमें यह तो अवश्य दिखाता है कि एक वनवासी युवती विवाह का फैसला स्वयं करती है, कहीं भी आने-जाने की वैयाक्तिक स्वतंत्रता उसे है लेकिन जिस प्रकार की वेशभूषा में युवतियों को अर्धनग्न दशा में दिखाया जाता है वह वनवासी संस्कृति की गरिमा के प्रतिकूल है चूँकि व्यावसायिक हिंदी सिनेमा का एक मात्र उद्देश्य कामुकता के जरिए लाभ बटोरना मात्र है। ये फिल्में बाजारवादी कला के भौंडेपन

का नमूना हैं। कहने के लिए वी.एस. रंगा द्वारा निर्मित फिल्म **'गिद्ध'** (**1984**) वनवासी युवतियों के प्रति इसी दृष्टिकोण को उजागर करती है। यद्यपि यह फिल्म वनवासियों से संबंधित कम और दलित वर्ग से अधिक संबंधित है। रोचक बात तो यह है कि हिंदी फिल्मों में वनवासी पुरुष पात्र हमें स्याह-पीत वर्णी चेहरे और देह पर बहुरंगी छवियों में दृष्टिगोचर होते हैं लेकिन वनवासी युवतियाँ दिखने में तथाकथित हमारे संभ्रांत समाज की आकर्षक और कामुक कुमारियाँ जैसी ही होती है यही मुख्यधारा के हिंदी सिनेमा का माया लोक और प्रपंच जगत है। एक अन्य फिल्म **'द नक्सलाईट'** की भी यहाँ चर्चा करना आवश्यक हो जाता है जिसने वनवासियों की छवि नक्सलियों के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस फिल्म की मुख्य भूमिका में भी मिथुन चक्रवर्ती ही थे जो व्यवस्था (राज्य) के अन्याय व उत्पीड़न का प्रतिरोध करने की भावना के चलते पुलिस और सरकार के विरुद्ध शस्त्र उठाने के लिए विवश हो जाता है। वनवासियों के जीवन यथार्थ की वास्तविक त्रासदी और नक्सलवाद के मूल कारणों की पड़ताल करने की अंतर्दृष्टि को ये जानबूझकर भुला बैठे हैं ताकि कला के बाजार में इनका माल बिकता रहे।

अब हम सिनेमा में वनवासी विमर्श के दूसरे पड़ाव यानी इक्कीसवीं शताब्दी की ओर बढ़ते हैं, जहाँ हमें **'लाल सलाम' (2002), 'हजारों ख्वाहिशें ऐसी' (2003) 'वेलकम टू सज्जनपुर (2008), 'रावण' (2010), चक्रव्यूह (2012) 'नक्सलबाड़ी' (2020), 'बस्तर-द नक्सल स्टोरी' (2024)** जैसी फिल्मों का सिलसिला दिखाई देता है। उल्लेखनीय है कि इस शताब्दी में फिल्मों की विषयवस्तु और उसके प्रस्तुतीकरण में काफी सकारात्मक परिवर्तन दिखाई देते हैं। यद्यपि इस दौर की आरंभिक फिल्मों में दृष्टिकोण पिछली शताब्दी वाला ही रहा है जहाँ नक्सलियों के प्रति बेचारगी और सहानुभूति प्रकट करने वाली मनोवृत्ति ही दृष्टिगत है। 'चक्रव्यूह' (2012) फिल्म की बात करें तो हम यह देखते हैं कि फिल्म का नायक (अभय देओल) नक्सलियों के गिरोह से इस उद्देश्य से जुड़ता है कि वह उनकी मुखबरी कर सके और उनके द्वारा फैलाई जा रही हिंसा और दहशत को रोक सके लेकिन यह फिल्म दर्शाती है कि नक्सली जो कर रहे हैं वह बिलकुल न्यायोचित है। जिसके चलते फिल्म का नायक उन्हीं का साथ देने लग जाता है। यह फिल्म वनवासियों को नक्सली के रूप में प्रदर्शित करती है और उनके द्वारा की गई हिंसा और हत्याओं को न्यायोचित ठहराती है कि नक्सली आजादी की लड़ाई सभी लड़ रहें है और जो तटस्थ बने हुए हैं उन्हें भी व्यवस्था के विरूद्ध मुहिम में शामिल हो जाना चाहिए। इसी क्रम में दूसरी फिल्म है **'बस्तर-द नक्सल स्टोरी'** का अध्ययन वनवासी विषयक अंतर्दृष्टि से किया जाए तो यह ज्ञात होता है कि यह फिल्म न केवल नक्सली आतंकवाद और लाल विचार (कम्युनिस्ट) के छद्म का पर्दाफाश करते हुए वनवासियों के वास्तविक जीवन यथार्थ का भी उद्घाटन करती है अर्थात लीक से हटकर यह एक विरला फिल्म है। यह फिल्म बताती है कि कैसे राह भटका एक राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय गठजोड़ राष्ट्र विरोधी ताकतों के लिए काम करता है और मीडिया समूह, प्रोफ़ेसर, युवा छात्र, लेखक व नेता वनवासियों की आड़ में हिंसा और अराजकता का नंगा खेल खेलते हैं। दुस्साहस की पराकाष्ठा का प्रदर्शन करते हुए ये सेना और वनवासियों की मृत्यु पर जश्न मनाते हैं और देश के सुरक्षाकर्मियों को जलील करने की खातिर गालीगलोच के स्तर पर उतर जाते हैं। भारतीय तिरंगा फहराने पर प्रतिबन्ध है और जो ऐसा करता है उसकी हत्या कर दी जाती है। गौरतलब है कि अब तक की अधिकतम फिल्में जो वनवासियों को केंद्र में रखकर बनायीं जाती थीं उनमें वनवासियों को नक्सल या माओवादी बनाते हुए, सरकार और वनवासियों के खिलाफ की गयी हिंसा को एक सकारात्मक विद्रोह

के रूप में दिखाया गया है। लेकिन बस्तर फिल्म यह बताती है कि कैसे उन वनवासियों को मौत के घाट उतार दिया जाता है तो विकास का दामन का थामकर आगे बढ़ना चाहते हैं। जिन्हें पक्की सड़के चाहिए और स्कूल-कॉलेज, अस्पताल और नौकरियाँ चाहिए लेकिन विडम्बना देखिए कि जो भी वनवासी इनके समर्थन में आते हैं उनकी क्षत-विक्षत देह 35 टुकड़ों में परिवार को प्राप्त होता है। फिल्म का यह संवाद दो पाटों के बीच में पिसते वनवासी आत्म-संघर्ष की विडम्बना को मुखरता से अभिव्यक्ति देता है- ''पुलिस की सुनो तो माओवादी मार देते हैं और माओवादी की सुनो तो पुलिस मार देती है लेकिन हमारी सुनने वाला कोई नहीं है।''

अंत में बस इतना ही कहना होगा कि आज ऐसी फिल्मों की अत्यंत आवश्यकता है जो समाज के जीवन यथार्थ को पूरी ईमानदारी से सही तरीके से हम सबके सम्मुख रखे। 'बस्तर-द नक्सल स्टोरी' इस दृष्टि से एक उत्कृष्ट उदाहरण अवश्य है।

जनजाति ज्ञान के संदर्भ में देशज संचार का स्वरूप

डॉ. वैभव उपाध्याय, अनुज कुमार सिंह

शोध सारांश

भारत में लगभग 700 जनजाति समूह व उप-समूह हैं। इनमें लगभग 80 प्राचीन जनजातियाँ हैं। भारत की जनसंख्या का 8.6% हिस्सा जनजातियों का है। भारत के अनुसंधान एवं प्रयोगों में देशज ज्ञान की खोज आज के दौर में नई प्रकृति के रूप में उभरा है इस लिए जनजाति समाज के देशज ज्ञान परंपराओं का अध्ययन करना बेहद जरूरी है। किसी भी समुदाय या संस्था में संचार के तीन तत्व का होना अनिवार्य होता है जिसमें संचारक, संदेश और माध्यम मुख्य रूप से होते हैं। जनजातीय समुदाय में भी यह संतुलन देखने को मिलता है। परंपरागत संचार माध्यमों या लोक संचार माध्यमों की जड़ें जनजाति क्षेत्रों में गहरी पैठी हैं। इनके माध्यम से न सिर्फ आदिवासी जन-जीवन की सामाजिक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति होती है बल्कि यह माध्यम समाज के संरक्षण एवं संवर्धन में भी सहायक हो सकता है। जनजातियों का संचार उनकी आपस में एकजुटता का प्रतीक एवं समाज का सबसे सशक्त माध्यम है। जनजाति समाज में कई प्रथाएँ ऐसी मिलेंगी जो संचार का बेहतरीन उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। जैसे- हलमा या घोटूल प्रथा। इस शोध के माध्यम से ऐसे ही सशक्त संचार माध्यमों की पड़ताल करते हुए इसका संकलन किया गया है।

शोध शब्द - जनजातीय, संचार, संचार पद्धति, देशज ज्ञान

पृष्ठभूमि

शाब्दिक जुड़ाव की दृष्टि से जनजाति दो शब्दों 'जन' और 'जाति' से मिलकर बना है। (गुप्ता, 2017) जन का शाब्दिक अर्थ है लोग, किंतु जाति के एक निश्चित शाब्दिक अर्थ को दे पाना जटिल कार्य है। इसके अर्थ की व्याख्या में प्रायः विद्वानों द्वारा अंग्रेजी के 'कास्ट' शब्द की सहायता ली जाती है। इस व्याख्या में एक से अधिक पर्याय और विशेषताएँ देखने को मिलती हैं, किंतु व्यावहारिक प्रयोग की दृष्टि से यह 'पहचान' के रूप में अर्थ प्रदान करते दिखाई पड़ती है। भारत में लगभग 700 जनजाति समूह व उप-समूह हैं। इनमें लगभग 80 प्राचीन जनजातियाँ हैं (आहूजा, 2000)। भारत की जनसंख्या का 8.6% (10 करोड़) जितना बड़ा हिस्सा जनजातियों का है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति एक जटिल अवधारणा है, जिसे विभिन्न अनुशासनों द्वारा अलग-अलग रूपों में परिभाषित किया गया है। इसके अर्थ को प्राप्त करने में संदर्भों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, उदाहरण स्वरूप श्यामाचरण दुबे (1985) जाति की अर्थ स्थापना के समय इसके तीन अर्थों पर बल देते हैं, जो अलग संदर्भगत विशेषता को धारण किए होती है और वही इनके पहचान प्रदर्शन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। संदर्भ विशेष के साथ संबद्धता ही 'जातीय पहचान' बन जाती है, उदाहरण स्वरूप, 'जन्मना प्रस्थिति' अथवा 'अन्तर्विवाही'। आहूजा (2000) 'जाति'

को परिभाषित करते हुए लिखते हैं, ''जाति एक 'अनुवांशिक' सामाजिक समूह है, जो अपने सदस्यों को सामाजिक गतिशीलता (यानी सामाजिक प्रस्थिति बदलने) की अनुमति प्रदान नहीं करती। इसमें जन्म के अनुसार प्रस्थिति अथवा श्रेणी निर्धारित होती है, जो व्यक्ति के व्यवसाय, विवाह और सामाजिक संबंधों को प्रभावित करती है (पृ.33)।'' भारतीय सामाजिक संरचना पर दृष्टि डाले तो इस प्रकार की पहचान धारण किए हुए स्थानीय, क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर असंख्य जातियाँ हैं (दुबे, 1985)। डब्लू.एच. रिवर्स के अनुसार, 'जनजाति एक सरल सामाजिक समूह है, जिसके सदस्य एक आम बोली का प्रयोग करते हैं तथा युद्ध एवं अन्य प्रकार के क्रियाकलापों के साथ-साथ कार्य करते हैं (पांडेय, 2007)।

प्रो. खुदीराम टोप्पो ने अपने एक लेख में जनजातियों की शासन व्यवस्था में भागीदारी विषय पर लिखते हुए बताया कि ''देश के सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र का 20 प्रतिशत भाग जनजातीय प्रदेश है।'' साहित्यिक ग्रन्थों में जनजाति को आदिवासी नाम से भी संबोधित किया जाता रहा है। पुरातन संस्कृत ग्रंथों में आदिवासियों को 'अत्विका' नाम से संबोधित किया गया एवं महात्मा गांधी ने आदिवासियों को गिरिजन (पहाड़ पर रहने वाले लोग) से संबोधित किया (एल्विन, 2007)। वर्जिनियस झाझा की अध्यक्षता में एक उच्च स्तरीय समिति का गठन 2013 में किया गया था। इस समिति के द्वारा जनजाति में मूल शब्द ''जाति'' को विस्तृत रूप से परिभाषित किया गया। विख्यात मानवशास्त्री **नदीम हसनैन** ने अपनी पुस्तक **'जनजातीय भारत'** में भारतीय जनजाति समुदाय से जुड़े विभिन्न मुद्दों के बारे में लिखा है। उन्होंने पुस्तक में जनजातीय समुदाय से संबंधित मानव विज्ञान के दृष्टिकोण से तथ्यों का संकलन किया है तथा भारत में जनजातीय समाज के ज्ञान और उनको स्वरूप को समझाने का भी प्रयास किया गया। V.S. Upadhyay ने अपनी पुस्तक Tribal Development in India में जनजातीय विकास से संबंधित इतिहास की विस्तृत चर्चा की है।

जनजाति विकास में 'पेसा कानून' एक बेहतर भूमिका निभा रहा है। इसके अंतर्गत ग्राम सभा की सिफारिशें मानने के लिए पंचायतें बाध्य हैं। यह कानून जनजातियों को उनके अपने संसाधन के उपयोग एवं नियम की स्वतन्त्रता देता है। यह कानून सैद्धांतिक रूप से गाँवों को स्वायत्तता देता है। सही अर्थों में इसकी व्याख्या की जाए तो पता चलेगा कि गाँव में प्रवेश के लिए ग्राम सभा की अनुमति जरूरी है।

क्र.स.	निवास क्षेत्र		जनजाति
1.	**उत्तर तथा पूर्वोत्तर क्षेत्र**	कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, द. उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तराखंड एवं पूर्वोत्तर के सभी राज्यों में	बकरवाल, गुर्जर, थारू, बुक्सा, राजी, जौनसारी, शौका, भोटिया, गद्दी, गारो, खासी, जयंतिया, लेपचा, राभा, मेचा, काछारी एवं मिकिर, गारो, खासी, आका, दाफला एवं भीरी, कोन्यक, रंगपात, सेमा, अंगामी, चंग और रेग्मा आदि।
2.	**मध्य क्षेत्र**	मध्यप्रदेश, दक्षिण राजस्थान, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़	भील, गोंड, रेड्डी, सबरा, उरांव, गड़बा, बोपंडों, हो, संथाल, मुंडा, विरहोर, खरिया बैंगा, मुरिया और मांडिया गौंड, कोल, कोरकू, सहरिया, बंजारा।
3.	**दक्षिणी क्षेत्र**	कर्नाटक, तमिलनाडु केरल, अंडमान निकोबार और अन्य	चेंचू, टोड़ा, कोटा, पनियन, ईरुला, कादर, माला (भील एवं भिलाला), निकोबारी, ओंग, जारवा, शाम्पेन एवं अंजमानी आदि
4.	**पश्चिमी क्षेत्र -**		भील एवं खासा आदि

स्रोत- शोधार्थी द्वारा प्राप्त आँकड़ों का सारणीकरण

भारत के अनुसंधान एवं प्रयोगों में देशज ज्ञान की खोज आज के दौर में नई प्रवृति के रूप में उभरा है। जनजाति समाज की देशज ज्ञान परंपराओं का अध्ययन करना जरूरी है। उनकी देशज ज्ञान परंपरा से आधुनिक समाज को बहुत कुछ सीखने की जरूरत है (रणेन्द्र, 2014)। जनजातियों का जीवन प्रकृति के ज्यादा नजदीक होता है। उनके दर्शन में प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाकर चलने का आदर्श होता है (रणेन्द्र, 2014)। न्यू मैक्सिको के प्यूबलो आदिवासी समाज के प्रोफेसर ग्रेगरी कजेटे ने अपनी पुस्तक 'नेटिव साइंसः नेचुरल लॉ ऑफ इंटरडिपेंडेंस' में यह बताने का प्रयास किया है कि उनके समाज के विज्ञान का दार्शनिक आधार आधुनिक विज्ञान से अलग है। जनजाति समाज में ज्ञान को जीवन से अलग नहीं माना गया है। बल्कि, ज्ञान को संगीत, कला और साहित्य में ही समाहित माना जाता है (मीणा, 2020)। अंडमान की जारवा जनजातियों के साथ वर्षों तक काम करने वाले डॉक्टर रतन चंद कार ने अपने लेख में बताया कि 'ये बेहद संजीदा लोग हैं। इनके रहन-सहन और तौर तरीके में बेहद सादगी और वैज्ञानिकता है (रणेन्द्र, 2014)।' इन्हें जंगल के पेड़-पौधों और उनके औषधीय गुणों का अद्भुत ज्ञान है (एल्विन, 2007)। गोंड जनजाति की ज्ञान परंपरा पर काम करने वाली शोधार्थी नीलम केरकेट्टा का मानना है कि आदिवासी के पास बीजों और पेड़-पौधों से संबंधित अद्भुत ज्ञान है, इस तरह के ज्ञान पर उन्होंने पुस्तकों का सृजन तो नहीं किया है, लेकिन उनके गीतों, कलाओं और दैनिक जीवन के क्रिया-कलापों में वह संकलित है। नामिबिया में जुस्सी एस जौहिईनें (Jussi S. Jauhiainen) और लौरी हूली (Lauri Hooli) ने देशज ज्ञान से जनजातीय समाज में जागरूकता विषय पर शोध किया। इस शोध में यह बात निकल कर आयी कि विकासशील देशों के लिए नवचार का उपयोग स्वदेशी ज्ञान के आधार पर पारस्परिक सहयोग से लक्ष्य को और बेहतर बनाया जा सकता है।

शोध उद्देश्य

- शोध का मुख्य उद्देश्य जनजातीय समुदाय के संचार स्वरूप को खोजना है।
- जनजातियों के देशज ज्ञान परंपरा में संचार का रूप क्या है इसे जानने के लिए।

शोध प्रश्न

- जनजातियों की देशज ज्ञान परंपरा में संचार पद्धति का स्वरूप क्या है?

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पूर्ण रूप से **विश्लेषणात्मक (Descriptive)** शोध है। इस प्रविधि का प्रयोग तथ्यों के निष्कर्षण के लिए किया गया है। इसके लिए **विवेचनात्मक (Inductive)** एवं **विश्लेषणात्मक (Analytical)** दृष्टियों का प्रयोग किया गया। इसके अंतर्गत **अवलोकन पद्धति (Observation Method)** का प्रयोग किया गया। इस विधि के अंतर्गत शोध क्षेत्र में भ्रमण कर जनजातियों के देशज ज्ञान परंपरा से परिचित होने के साथ ही संचार पद्धति की उपलब्धता का पता लगाया गया। इसके तहत अर्द्धसहभागी अवलोकन किया गया।

विश्लेषण

विश्लेषणात्मक रूप से देखने को मिलता है कि जनजातियों में कई ऐसी पद्धति एवं प्रणालियाँ विद्यमान हैं जिनका संचार हेतु वृहद रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। यह संचार पद्धतियाँ संवाद के स्वरूप एवं

सामाजिक/सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को अपने अंदर समाहित किए रहती हैं। विश्लेषणात्मक रूप से यह देखा गया कि जनजातियों की दो महत्वपूर्ण संस्थागत व्यवस्थाएँ हैं जिनका जिक्र बाद की संचार व्यवस्थाओं में प्राप्त होता है। हलमा और घोटूल सामाजिक एवं सांस्कृतिक मुद्दों पर चर्चा-परिचर्चा की आयोजन कर्तरि संस्थाएँ हलमा और घोटूल हैं।

संचार पद्धति

संचार पद्धति की उपयोगिता और उपस्थिति एवं प्रयोग लगभग हर समुदाय में होती है। बिना संचार के किसी भी योजना का एवं क्रियान्वयन संभव नहीं हो सकता है। संचार एक ऐसी प्रक्रिया है जो सतत् चलती रहती है। किसी भी समुदाय या संस्था में संचार के तीन तत्वों का होना अनिवार्य होता है जिसमें संचारक, संदेश और माध्यम मुख्य रूप से होते हैं (राजगढ़िया, 2008)। जनजातीय समुदाय में भी यह संतुलन देखने को मिलता है। **ओसाम मंजर** ने देश के प्रतिष्ठित समाचार पत्र समूह हिंदुस्तान टाइम्स के हिंदी पत्र हिंदुस्तान के पोर्टल पर जनजातीय समुदाय में संचार माध्यमों के विस्तार नहीं किए जाने पर चिंता जताई है। उन्होंने बताया कि डिजिटल माध्यम जनजाति समुदायों के बीच की दूरी को कम करने में प्रभावी साबित हुआ है पर यह तथ्य केंद्र व राज्य स्तरों के जनजातीय विकास कार्यक्रमों में गायब है। हेराल्ड लॉसवेल का मॉडल जनजाति क्षेत्रें में बहुत पहले से कार्य करता प्रतीत होता है। हेराल्ड लॉसवेल के मॉडल में क्या, कौन, किस माध्यम से, किससे और कैसे सूचनाओं का संप्रेषण किया जाता है समाहित है। यह मॉडल यह तय करता है कि सूचना लक्षित समुदाय को कितना और कैसे प्रभावित करती है? आदिवासी समाज में यह सिद्धान्त बहुत पहले से कार्य कर रहा है। जनजातियों का संचार उनकी आपस में एकजुटता का प्रतीक एवं समाज का सबसे सशक्त माध्यम है। जनजाति समाज में कई प्रथाएँ ऐसी मिलेंगी जो संचार का बेहतरीन उदाहरण प्रस्तुत करती हैं, जैसे- हलमा या घोटूल प्रथा।

परंपरागत संचार माध्यमों या लोक संचार माध्यमों की जड़ें जनजाति क्षेत्रों में गहरी पैठ हैं (रणेन्द्र, 2014)। इनके माध्यम से न सिर्फ आदिवासी जन-जीवन की सामाजिक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति होती है बल्कि यह माध्यम समाज के संरक्षण एवं संवर्धन में भी सहायक हो सकती हैं। लोकगीत, लोकसंगीत, लोकनृत्य, नौटंकी, कठपुटली आदि आदिवासी संचार की मूल पद्धतियाँ हैं। ये माध्यम आदिवासी समाज के मध्य संवाद एवं संचार का सीधा माध्यम हैं।

देशज ज्ञान

यहाँ देशज ज्ञान से सीधा आशय स्थानीय ज्ञान से है। एक ऐसा ज्ञान जो संबंधित स्थानीय समाज-सांस्कृतिक परिवेश से संबंधित हो। देशज ज्ञान के माध्यम से जनजातीय समाज में जागरूकता विषय पर शोध करते हुए प्रो. केरकट्टा ने बताया कि जनजातियों द्वारा उस विकास को जल्दी स्वीकार किया गया जो उसकी संस्कृति से जुड़ा था (Bharti, 2015)। इस शोध में यह भी निकल कर आया कि विकासशील देशों के लिए नवाचार का उपयोग स्वदेशी ज्ञान के आधार पर पारस्परिक सहयोग से लक्ष्य को बेहतर बनाया जा सकता है। 'Indigenous Knowledge: Implications in Tribal Health and Disease' विषय पर हुए एक शोध में यह देखा गया कि सामाजिक अनुसन्धान और मानव विज्ञान में देशज ज्ञान की खोज ने आज के दौर में नई प्रवृत्ति के रूप में जन्म लिया है।

हलमा

हलमा एक ऐसी प्रथा है जिसके तहत समाज के जरूरतमन्द के लिए सामूहिक एकत्रीकरण होता है (White, Nair, Ashcroft, 1994)। इस प्रथा के तहत लोग उस स्थान पर पहुँचते हैं जहाँ किसी आदिवासी परिवार, समाज, संस्था की मदद करनी होती है। शोध क्षेत्र में गोंड आदिवासी समाज ने जल संरक्षण केंद्र बनाने के लिए हलमा के अंतर्गत ज़िम्मेदारी ली, लोगों ने आहवान किया कि इस बार धरती माँ हलमा बुला रही है यानी मदद के लिए बुला रही है। देखते-ही-देखते तय स्थान पर भारी संख्या में आदिवासी इकट्ठा हुए और बिना किसी शुल्क के तीन दिन तक एक ही स्थान पर रुक कर हजारों जल संरक्षण केंद्र बना दिये। यह सामूहिक संचार और आपदा संचार का बेहतरीन उदाहरण है।

हलमा एक तरह की प्रशिक्षण कार्यशाला भी है। प्रशिक्षण इसलिए क्योंकि हलमा के माध्यम से आदिवासी अपनी अगली पीढ़ी के लिए ये सारे गुण काश्तकारी के माध्यम से सिखाते हैं। चूँकि आदिवासी ज्ञान का एक मात्र संकलन मौखिक होता है इसलिए भी यह परंपरा प्रशिक्षण कार्यशाला के रूप में जानी पहचानी जाती है। आदिवासी अपने देशज ज्ञान का प्रसार या कहें कि संरक्षण इसी पद्धति से करते हैं। यही कारण है कि आदिवासी अपने तीज-त्योहार इत्यादि का इस्तेमाल प्रशिक्षण कार्यशाला के रूप में करते हैं। ऐसी कार्यशाला के माध्यम से एक तो समूहिक समाधान होता है दूसरा उस समाज के नई पीढ़ी के सदस्य उससे परिचित होते हैं। यही कारण है कि इस प्रकार की तमाम परम्पराएँ आदिवासी जीवन का हिस्सा अनिवार्य रूप से हैं। हलमा की संरचना में समाज केंद्र में होता है और उसकी परिधि आदिवासियों के श्रम से सिंचित होती है।

स्रोत-शोध की आवश्यकता एवं परिणाम के लिए शोधार्थी की दृष्टि

घोटूल

घोटूल संचार पद्धति एवं संचार स्वरूप की दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण माना जाता है। यह समूह संचार का एक अच्छा एवं देशज उदाहरण पेश करता है। घोटूल परंपरा के तहत गोंड आदिवासी समाज अपनी समस्या को लेकर एक जगह इकट्ठा होते हैं और सामूहिक मद्‌द से उस समस्या का निदान करते हैं। इस एकत्रीकरण में सामाजिक सांस्कृतिक जरूरतों को पूरा किया जाता है। जनजाति समाज में विवाह संस्कार से जुड़ी चर्चा एवं साथी चुनाव के लिए भी यह माध्यम बेहद प्रासंगिक है। यह सामूहिक संचार के साथ ही अंतरव्यक्तिक संचार का उदाहरण पेश करता है। घोटूल का अस्तित्व लगभग सभी जनजाति समुदाय में पाया जाता है परंतु इसके स्वरूप एवं नाम में कुछ अंतर जरूर होता है। घोटूल आदिवासी समुदाय के लिए जीवन की उपयोगिता पर चर्चा करने एवं सामाजिक प्रशिक्षण का एक मंच है। गढ़चिरौली जिले के मेंढ़ा लेखा गाँव के प्रमुख एवं मार्गदर्शक देवा जी तोफा ने घोटूल की चर्चा करते हुए बताया कि इसने उनके गाँव के लिए सामाजिक स्वाभिमान जगाने एवं जागृत करने का काम किया। उन्होंने अपने गाँव के लिए घोटूल की उपस्थिति पर विस्तृत चर्चा की।

स्रोत- शोध की आवश्यकता एवं परिणाम के लिए शोधार्थी की दृष्टि

शोधार्थी की दृष्टि

घोटूल के माध्यम से समाज के समस्याओं का समाधान किया जाता रहा है। समस्याओं का समाधान करने में संबंधित समाज के संचार स्वरूप का इस्तेमाल किया जा रहा है। स्थानीय संचार पर भाषा का प्रभाव बहुत अधिक देखा गया। गैर-भाषिक समाज के लोग इस परिस्थिति में कुछ बोलने-कहने से बचते हैं।

प्रस्तुत शोध में कई ऐसे गाँव मिले जहाँ मोबाइल फोन और कंप्यूटर की संख्या 50 प्रतिशत तक प्राप्त हुई लेकिन वहीं जब इन्टरनेट आधारित इन उपकरणों के इस्तेमाल का प्रतिशत निकाला गया तो यह मात्र 15 प्रतिशत ही रहा। इसका मतलब बहुत कम जनजातियाँ इन क्षेत्रों में इन्टरनेट पर उपलब्ध सूचना को प्राप्त कर पा रहा है। इसी प्रकार महिला और पुरुष में भी यह आँकड़े प्राप्त हुए। जो तथ्य प्राप्त हुए उसके अनुसार मात्र 7 प्रतिशत महिलाएँ ऐसी हैं जो कंप्यूटर मोबाइल के साथ इन्टरनेट का इस्तेमाल कर रही हैं।

निष्कर्ष

शोध विषय के अंतर्गत अवलोकन एवं तथ्य संकलन और साहित्य के अध्ययन के उपरांत जो बात निष्कर्ष के रूप में सामने आती है उसके आधार पर जनजातियों की देशज ज्ञान परंपरा काफी समृद्ध है। इसकी समृद्धि ही इसके शोषण का कई बार कारण भी बनती है। कई बार ऐसा हुआ कि बड़े औद्योगिक घरानों के लोग जनजातियों के देशज ज्ञान को प्राप्त करने के लिए उनके साथ छल करते हैं। इसके ढेर सारे उदाहरण संबंधित क्षेत्रों में मिल जाते हैं। अतः शोध के अंतर्गत निम्न्न बिन्दुओं को निष्कर्ष के रूप में स्वीकृति प्रदान की गई है।

- जनजातियों की अपनी संचार पद्धति समृद्ध रूप में उपलब्ध है।
- जनजातियों के देशज ज्ञान में ही उनके संचार के रूप छुपे हुए हैं।
- जनजाति अपनी देशज संचार पद्धति पर किसी भी प्रकार के संचार के लिए अधिक विश्वास करते हैं।
- जनजातियों के देशज ज्ञान का संकलन करते हुए उनकी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति एवं सामाजिक विश्वास को बचाया जा सकता है।

संदर्भ सूची

दुबे, श्यामाचरण. (1985). भारतीय समाज. नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. पृ. 42-43.

आहूजा, राम. (2000). भारतीय समाज जयपुरः रावत पब्लिकेशन्स. पृ. 33

हसनैन, नदीम. जनजातीय भारत. नई दिल्लीः जवाहर पब्लिशर्स ऐंड डिस्ट्रीब्यूटर, 2010.

भानावत, संजीव. भारत में संचार माध्यम, जयपुरः राजस्थान विश्वविद्यालय, 2005.

मेहता, आलोक, भारत में पत्रकारिता. नई दिल्लीः नेशनल बुक ट्रस्ट, 2007.

विलानिलम, जे.वी, और डॉ. शशिकांत शुक्ल, जनसंचारः सिद्धांत एंव व्यवहार, भोपालः मध्य प्रदेश ग्रंथ अकादमी, 2003.

जोशी, रामशरण, आदमी, बैल और सपने. दिल्लीः कल्याणी शिक्षा परिषद, 2008. चॉम्स्की, नोम. जनमाध्यमों का माया लोक. नई दिल्लीः ग्रंथ शिल्पी, 2006.

Servaes, Jan. *Sustainable Development Goals in the Asian Context*. Singapor: Springer, 2016.

Godemann, Jasmin. Gerd Michelsen. *Sustainability Communication*. New York: Springer, 2011.

Hund, Gretchen, Jill Engel-Cox, Kim Fowler. A *Communications Guide for Sustainable Development*. London: Battelle Press, 2004.

Lal, B. Suresh. *Tribal Devlopment Issues in India*. New delhi: Serials Publications, 2014.

Joshi, Vidyut, and Chandrakant Upadhyaya. Tribal Situation in India. Jaipur: Rawat publications, 2017.

Sillitoe, Paul. *Local Science Vs Global Science: Approaches to Indigenous Knowledge in International Development*. New York: Berghahn Books, 2009.

Grenier, *L. Working with Indigenous Knowledge: A Guide for Researchers.* Canada: International Development Research Center, 1998.

Warren, D. M. Indigenous Knowledge, Biodiversity Conservation and Development. USA: Center for Indigenous Knowledge for Agriculture and Rural Development, 1992.

स्वतंत्रता आंदोलन में पूर्वांचल की ग्रामीण पत्रकारिता (जासूस पत्रिका के विशेष संदर्भ में)

विवेक कुमार, प्रो. मनीष शर्मा

सारांश

किसी भी देश के लिए स्वतंत्रता की प्राप्ति काफी हद तक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रकृति के साथ-साथ कई दर्शन जैसे विविध कारकों के कारण होती है। साहित्य शुरुआत से ही सत्ता का मानक विपक्ष रहा है। विशेषकर जब सत्ता तानाशाही और अत्याचारी हो तो क्रांतिकारी संघर्ष का दायित्व भी साहित्य को ही मिलता है। साहित्य की अलग-अलग विधाओं में उसकी साधना कर रहे उसके साधक ही सत्ता से संघर्ष में अपने लेखन से चुनौतियाँ देते हैं। समाज की भी रूढ़िवादिता और कुरीतियों से मुक्त कराने का श्रेय भी कलम के सिपाहियों को जाता है जो समाज को आंतरिक चेतना को जाग्रत रह कर उसे आदर्श नवाचारों के लिए प्रेरित करते रहे हैं। इन क्रांतिकारियों के लिए लेखक, कवि, उपन्यासकार, नाट्यकर्मी व्यंग्यकार अनेकानेक संबोधन हैं और इनकी अलग-अलग विधाओं में कुशलता और कीर्ति देखते ही बनती है। ऐसे ही एक क्रांतिकारी गोपालराम गहमरी ने हिंदी भाषा में जासूसी की नई विधा को अपनी पत्रिका से लोकप्रिय बनाया। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान प्रेस और प्रिंट मीडिया के माध्यम से पत्रकारिता ने स्वतंत्रता का समर्थन करने के लिए भारतीयों में राष्ट्रवाद और देशभक्ति की भावनाओं का स्वर मुखर किया। स्वातंत्र्य संघर्ष के नेतृत्व कर्ताओं ने अपने विचारों का प्रचार करने और भारत के स्वतंत्रता संग्राम में उनकी सक्रिय भागेदारी सुनिश्चित कराने के लिए समाचार पत्रों और पत्रिकाओं का उपयोग किया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में नेताओं को एक और समस्या का सामना करना पड़ा, सेंसरशिप और विविध प्रतिबंध लगाने की समस्या। ब्रिटिश सरकार ने वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट और गैगिंग एक्ट जैसे कठोर कानून विकसित किए। स्वतंत्रता सेनानियों और पत्रकारों ने इन कृत्यों के खिलाफ लड़ाई लड़ी। इस शोध पत्र से लेखक ने भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए और अपने देशवासियों को शिक्षित एवं आलोकित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने वाले पूर्वांचल के ग्रामीण समाचार पत्रों द्वारा किए गए योगदान का विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

मुख्य शब्दः पूर्वांचल, स्वतंत्रता आंदोलन, समाचार पत्र, जासूस

प्रस्तावना

विदेशी शासन से खुद को मुक्त करने के लिए भारत का लंबा संघर्ष वीरता की गाथा रही है। अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वालों के अनकहे दुख और कष्ट स्वशासन के लिए संकल्प और तड़प की कहानी का एक हिस्सा हैं। लड़ाई केवल राजनीतिक अधिकारों के लिए नहीं थी, बल्कि जीवन के सभी क्षेत्रों में विदेशी शासन के उत्पीड़न से मुक्ति के लिए थी। इन वर्षों में, स्वतंत्रता संग्राम ने देश की लंबाई और चौड़ाई में गहरी जड़ें जमा लीं। इसने जाति, पंथ, क्षेत्र और धर्म की दीवारों को गिराकर देश के कोने-कोने से ताकत और हिम्मत हासिल की।

भारतीय भाषा के प्रेस ने स्वतंत्रता आंदोलन के संघर्ष में ऐतिहासिक और यादगार भूमिका निभाई है। समाचार पत्रों ने भारतीय जनता को ब्रिटिश साम्राज्य की क्रूरताओं से अवगत कराया। देशभक्ति की कविताओं, गीतों और अखबारों में प्रकाशित लेखों ने ब्रिटिश सरकार को बेचैन कर दिया। हिन्दी के आधुनिक साहित्य का इतिहास एक तरह से पत्र-पत्रिकाओं में लिखे गए साहित्य का इतिहास है। आधुनिक हिन्दी में जितने महत्त्वपूर्ण आंदोलन छिड़े, पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से छिड़े। न जाने कितनी श्रेष्ठ रचनाएँ पाठकों के सामने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से आईं। (सुरेश गौतम, 2001)

समाचार पत्रों के माध्यम से भारतीय लोग देश में चल रही सभी गतिविधियों से खुद को अवगत कराते रहे। विभिन्न समाचार पत्रों में प्रकाशित साहित्य ब्रिटिश सरकार के लिए एक चुनौती थी। इतने सारे साहित्य पर अंग्रेजों ने प्रतिबंध लगा दिया था। यह ठीक ही कहा गया है कि कलम तलवार से अधिक शक्तिशाली होती है।

उनके अनुसार राष्ट्र एक ऐसी राजनीतिक इकाई है जो या तो स्वतंत्र हो या स्वतंत्र होने की इच्छा रखता हो। राजनीतिक रूप से स्वाधीन होने की कामना के उदय से राष्ट्र-निष्ठा जाग्रत होती है। राष्ट्रीय चेतना के अन्तर्गत मातृभूमि का स्तवन, स्वदेश गौरव-गान, अतीत चिन्तन, वीर प्रशस्ति, स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार, विदेशी तत्वों के प्रति उपेक्षा भाव आते हैं। इसी सत्प्रेरणा के फलस्वरूप भारत में राष्ट्रवाद का उदय हुआ।

भारत में समाचार पत्र आम जनता की स्वधर्मी परंपरा है। समाचार पत्र की प्रमुख भूमिका राष्ट्र और उसके आसपास के प्रहरी के रूप में कार्य करना है, इस बुनियादी कार्य के अलावा यह शिक्षा और मनोरंजन का एक महत्वपूर्ण साधन भी है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएँ सूचनाओं को प्रसारित करने का प्रभावशाली साधन और माध्यम है।

भारत में समाचार पत्र पहली बार 29 जनवरी, 1780 को ब्रिटिश राज के तहत जेम्स ऑगस्टस हिक्की द्वारा प्रकाशित किया गया था और इसका नाम ''बंगाल गजट'' या कलकत्ता जनरल एडवरटाइजर या आमतौर पर ''हिकीज गजट'' के रूप में जाना जाता था। (www.bl.uk, n.d)।

वर्ष 1857 को भारत में पत्रकारिता के उद्‌भव वर्ष के रूप में जाना जाता है। इस वर्ष को भारतीय प्रेस और ब्रिटिश प्रेस के विभाजन के रूप में चिह्नित किया गया है और इसके परिणामस्वरूप 1876 में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट आया। (विवेस पैनोरमा, 2015)। वर्ष 1861 में रॉबर्ट नाइट द्वारा ''द टाइम्स ऑफ इंडिया'' का पहला संस्करण प्रकाशित किया गया था। पुनः वर्ष 1868 में ''अमृत बाजार पत्रिका'' शुरू की गई, इस समाचार पत्र ने मुख्य रूप से समाज सुधारकों और राजनीतिक नेताओं पर ध्यान केंद्रित किया और पत्रकारिता के क्षेत्र में योगदान देना शुरू कर दिया। ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय समाचार-पत्रों ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अत्यधिक सक्रिय भूमिका निभाई थी। आजादी के बाद अखबारों की भूमिका बदल गई और यह उद्‌योग में परिणत होकर पूर्णतः व्यावसायिक हो गया तथा बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार देना शुरू कर दिया।

पत्रकारिता क्या है?

मानव जो कुछ भी देखता है उसे अन्य व्यक्तियों में साँझा करना चाहता है साथ ही स्वयं भी उपस्थित ज्ञान एवं सूचनाओं से अवगत होना चाहता है। किसी घटना को परखना और उसका वर्णन करना मानव-आत्मा की एक सहज प्रवृत्ति है। इसी भावाभिव्यक्ति की प्रवृत्ति के कारण जन-माध्यम का आविष्कार

हुआ। संवेदनाओं और अनुभूतियों के पारस्परिक आदान-प्रदान के लिए संचार-साधनों का उपयोग होता है। संकेत में जब हाव-भाव व्यक्त होते हैं तब संचार की वह सूक्ष्म स्थिति और जब भाषा का प्रयोग होता है तो स्थूल स्थिति होती है। सूचना, विचार और अभिवृत्ति को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक सम्प्रेषित करने की मानव-लालसा बहुत पुरानी है (Devi, 2018) जिस प्रकार ज्ञान प्राप्ति की उत्कण्ठा, चिन्तन एवं अभिव्यक्ति की आकांक्षा ने भाषा को जन्म दिया ठीक उसी प्रकार समाज में एक-दूसरे के कुशलक्षेम की कामना ने पत्रों के प्रकाशन को बढ़ावा दिया। पहले ज्ञान रूपी दिव्य शक्ति जो कुछ सुविधा सम्पन्न मुट्ठीभर लोगों की थाती थी उसे पत्रकारिता द्वारा सर्वसुलभ कराया गया। परिस्थितियों के अध्ययन, चिन्तन-मनन और आत्माभिव्यक्ति की प्रवृत्ति तथा सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय के प्रति उपजी व्यग्रता ने पत्रकारिता को जन्म दिया (वही, पृष्ठ संख्या 518)

पूर्वांचल के समाचार-पत्रों का योगदान

पूर्वांचल आध्यात्मिकता की भूमि रही है और भारत के सबसे प्राचीन क्षेत्रों में से एक है। अपनी समृद्ध विरासत और संस्कृति के साथ, इसने सभी पंथों, संप्रदायों और विश्वासों को आत्मसात करके एक विशिष्ट पहचान बनाई है। दुनिया भर में रहने वाले पूर्वांचल के लोगों ने इस क्षेत्र की समृद्ध संस्कृति और परंपराओं को संरक्षित रखा है।

समाचार-पत्रों के उद्भव काल से ही पूर्वांचल का योगदान सर्वोपरि रहा है। जब ठोस तथ्यों पर आधारित समाचार पत्र के स्थान पर अलंकृत खबर यूँ कहे विविध विधाओं का उपयोग करके, आम जन में समानता, स्वतंत्रता, न्याय और सत्य जिससे राष्ट्रीय चेतना जागृत हो सके उसपे काम हुआ। लार्ड मैकाले ने ब्रिटिश शासन काल में शिक्षा प्रणाली को भारत में लागू किया, जिसका उद्देश्य मैकाले ही के शब्दों में इस प्रकार है, ''हमें ऐसे वर्ग को बनाने के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए जो हमारे और लाखों के मध्य एक कड़ी बने, यह वर्ग रक्त तथा रंग में भारतीय हो और स्वाद, विचार, शब्दों और बुद्धि में अंग्रेज हो।'' (आ. रामचन्द्र शुक्ल) इस कार्य हेतु अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार किया गया। परन्तु साथ-ही-साथ दूसरी ओर भारतीय भाषाओं पर कुठाराघात होने लगा। विशेषतः उत्तर प्रदेश में, जहाँ उसके विकास और विस्तार में अंग्रेजों ने नई मुश्किलें पैदा कर दीं। जबकि उर्दू-हिंदी विवाद के कारण भाषा को लेकर सांप्रदायिक विभाजन भली-भाँति अस्तित्व में आ गया था जिसके बल पर अंग्रजों ने हिंदू-मुस्लिम एकता को तोड़ने का प्रयास किया और पत्रकारिता को भी इसने प्रभावित किया। परिणामस्वरूप सांप्रदायिक आधार पर पत्रकारिता हिंदी और उर्दू दो अलग-अलग खेमों में बँट गई।

हिंदी को सशक्त करने का कार्य भारतेन्दु और उनकी पीढ़ी के पत्रकारों ने उठाया। उस समय साप्तहिक पत्रों का धेय्य पाठकों को देश की दशा दशा से परिचित कराना और उन्हें सचेत कर मध्यकालीन रुढ़िवादी परम्परा 'की बेड़ियों से मुक्त कर प्रगतिगामी बनाना था। चूँकि खबरें अंग्रेजी में प्राप्त होती थीं और उनका अनुवाद होने के बाद ही प्रकाशन हो पता था, जिसकी वजह से खबरें पुरानी हो जाती थीं। इस परिस्थिति से निपटने के लिए विचार परक लेखों का उद्भव हुआ। वैचारिक गद्य से हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित करने का श्रेय 'कविवचनसुधा', 'बिहारबंधु', 'हिन्दी प्रदीप', 'भारतमित्र', 'क्षत्रिय पत्रिका', 'उचित वक्ता', 'आनन्द कादम्बिनी, ब्राह्मण आदि पत्रों को जाता है परन्तु अभी भी उसके परिमार्जन की आवश्यकता बनी हुई थी जो महामना मालवीय, बालमुकुन्द गुप्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी, बाबुराव विष्णु पराड़कर, गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी, माधव सप्रे, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि पत्रकारों द्वारा पूरा हुआ।

'विद्या धर्म दीपिका' एक मासिक पत्रिका थी जो कि गोरखपुर से वर्ष 1888 में प्रकाशित होती थी। इस पत्रिका के संपादक चंद्रशेखर धर मिश्रा थे। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य समाज संस्कार, राजनीति एवं धर्म सुधार पर केंद्रित था। गोरखपुर से मुनीश्वर श्री शिवमुनि जी ने 'ज्ञानशक्ति' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। 1915 से 1919 तक ज्ञानशक्ति ने बिना झुके बिना रुके अनवरत प्रकाशन का कार्य किया। गोरखपुर से ही पंडित गौरीशंकर मिश्रा ने प्रभाकर नाम का पत्र प्रारम्भ किया। बस्ती से 'बस्ती गज़ट' नामक पाक्षिक पत्र प्रकाशित हुआ।

काशी से सरस्वती का प्रथमांक सन् 1900 में छपा, जिसके संपादक मंडल में बाबू जगन्नाथ, बाबू राधा कृष्ण दास और खत्री जी जैसे गणमान्य व्यक्ति थे।

'रसिक रहस्य' को जौनपुर से 1906 में श्री सीताराम उपाध्याय जी ने प्रकाशित किया। कुछ महीनों बाद यह पत्र बंद हो गया। सन 1906 में ही जौनपुर से एक और पत्र प्रकाशित हुआ जो कि मासिक था, जिसे कालीशंकर व्यास जी ने 'पियूष प्रवाह' नाम दिया था।

बलिया से 'श्री कवि समालोचक' प्रकाशित हुई जिसके संपादक राजकवि सुजान जी थे। यह पत्रिका भारतेन्दु बाबू की कविवचनसुधा के समकक्ष थी। बलिया के प्यारे मोहन श्रीवास्तव जी ने 1916 में 'हिन्दू' पत्र का प्रकाशन बम्बई से किया।

शोध उद्देश्य

- स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जासूस पत्रिका की पत्रकारिता का अध्ययन करना।
- पूर्वांचल की ग्रामीण पत्र पत्रिकाओं में बाबू गोपाल राम गहमरी के योगदान की स्थिति का संज्ञान लेना

शोध अभिकल्प

इस शोध पत्र में विवरणात्मक शोध विधि का उपयोग किया गया। गाज़ीपुर जिसको लहुरी काशी के नाम से जाना जाता था। वहाँ के एक गाँव से पत्रिका का प्रकाशन और लोगों के बीच लोकप्रिय हो जाना, इस शोध विषय को महत्वपूर्ण बनता है। इस अध्ययन के लिए लेख दस्तावेज पढ़े गए हैं और प्राप्त द्वि तीयक आँकड़ा उपयोग किया गया है।

बाबू गोपाल-राम गहमरी का योगदान

सन् 1893 ई. में बाबू गोपाल राम गहमरी ने बम्बई से 'भारत भूषण' नामक मासिक पत्र निकाला। जीवन चरित्र से सम्बद्ध इस पत्र ने महाराष्ट्र में हिन्दी की पत्रकारिता को लोकप्रिय बनाया। कालाकांकर (प्रतापगढ़, उत्तरप्रदेश) से निकलने वाले दैनिक 'हिन्दोस्थान' के गहमरी जी नियमित लेखक थे। इसके साथ ही उस समय की श्रेष्ठ पत्र-पत्रिकाएँ 'बिहार बंधु': 'सार सुधानिधि' में भी वे नियमित लिखते थे। सन् 1900 ई. से ही रंगदार रोचक मुखपृष्ठ के साथ 'जासूस' बनारस से छपता था तथा गहमर (गाजीपुर) से जारी होता था। 'जासूस' के अनेक अंकों में सम्पादक ने लिखा, कि ''यह पत्रिका हिन्दी-जगत् में बिल्कुल नयी चीज है जो हिन्दी में पहले कभी नहीं छपी थी, जिसके बिना हिन्दी संसार एकदम सूना था, उसी जगमगाते हुए 'जासूस' की लोकप्रियता बढ़ रही है। चक्करदार मामिलों के बयान के साथ समकालीन राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक घटनाओं को समाहित कर पत्रिका ने जनता में नयी चेतना भर दी।''

भारतेन्दु ने गहमरी के बारे में लिखा है-

जे सूरजते बढ़ि गए, गरजे सिंह समान

तिन आजु समाधि पर, मूतत सियरा खान-भारतेंदु

समाज-सुधार के लिए बड़े ही रोचक शैली में 'जासूस' ने शिक्षाप्रद सामग्री को प्रस्तुत किया। यह पत्रिका एक दो वर्ष नहीं, पूरे 38 वर्ष तक गहमर जैसे गाँव से निकलती रही। जिस तरह बालकृष्ण भट्ट ने भूख से जूझते हुए 33 वर्षों तक 'हिंदी प्रदीप' को प्रदीप्त रखा, वैसे ही गोपालराम गहमरी ने 'हैंड टू माउथ' ही सही, 38 साल तक इसे जीवित रखा। (कृष्ण, 2011)

'जासूस'

''डरिये मत यह कोई भकौआ नहीं है। धोती सरिया कर भागिये मत यह कोई सरकारी सी. आई. डी. नहीं है।

है क्या ! क्या है ?

यह 50 पन्ने की सुन्दर सभी सजायी मासिक पुस्तक माहवारी किताब जो हर पहले सप्ताह सब ग्राहकों के पास पहुँचती है। हर एक में बड़े चुटीले, बड़े चटकीले, बड़े रसीले, बड़े गरबीले, बड़े नशीले मामले छपते हैं। हर महीने बड़ी पेचीली, बड़ी चक्करदार, बड़ी दिलचस्प घटनाओं से बड़े फड़कते हुए अच्छी शिक्षा और उपदेश देनेवाले उपन्यास निकलते हैं। कहानी की नदी ऐसी हरहराती है, किस्से का झरना ऐसा झर्राता है कि पढ़नेवाले आनन्द के भँवर में डूबने उतराने लगते हैं।'' 'जासूस' हिन्दी की दुनिया में क्या कर रहा है?

यह है 'जासूस' के जन्मदाता बाबू गोपालराम गहमरी के शब्दों में 'जासूस' का परिचय। 'जासूस' में राजनीतिक और सामाजिक चित्रण दिल्ली दरबार के समय जैसी सजावट हुई उस पर गहमरी जी ने अपने दिल की कचोट को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया हैः

'होली ''जैसे भारत में अनेक अकाल, महामारी आदि बीमारियों की बिपत रहते हुए भी हमारे होनहार भावी सम्राट युवराज की आँखों तले वही मौज, हरियाली कौन पूछता और खुशी के सामान ही नज़र आ रहे हैं वैसे ही होली भी भारत भर में अबीर, गुलाल और कुमकुमों की मार देखी गयी किन्तु इनके भीतर का दुःख है? कितने भारतवासी कहाँ संकट में पड़े कराहते हैं, कितने अन्न बिना सूख कर साँठ हुए जाते हैं, कितने पेट का दुःख न सहकर परलोक पधार रहे हैं, उसका लेखा इन लोगों को कौन सुनावेगा?'' (गहमरी, फाग, 1906)

'जासूस' की इन पंक्तियों में समाज का जैसा चित्रण है, राष्ट्रीय भावना जिस तरह हिलोरें ले रही है, ठीक इसी तरह 'फाग' शीर्षक में वर्णित हैः

''अब तो चेत करो रे भाई!

सब धन ढोयो जात बिलायत, रह्यो दलिद्दर छाई।

अन्न-बस्त्र कहुँ सब जन तरसैं, होरी कहाँ सुहाईष (गहमरी, वैश्योपकारक)

भारत ही नहीं अपितु अमेरिका में फिलिपाइन टापू पर अमेरिकन जनरल द्वारा किये गए अत्याचार और कत्लेआम पर भी, बाबू गोपालराम गहमरी ने पत्रिका में व्यंग्य का अभूतपूर्व उपयोग किया। बाप रे बाप, हे भगवान जैसे संबोधनों के माध्यम से उन्होंने लोगों की विवशता दयनीयता का उल्लेख किया। उसका चित्रण 'जासूस' यों करता हैः

''बाप रे बापः फिलिपाइन टापू में अमेरिकावालों का राज है। हाल में अमेरिकन जनरल ने वहाँ के हजार बाशिन्दों को लड़के वालों सहित कतल करवा डाला। बार रे बाप! सभ्यता की ऐसी चलती में प्रजा पर राजा का ऐसा नादिरशाही कतल आम! हे भगवान्! वैसे हत्यारों को भारत से समुद्र पार ही रखना।'' (गहमरी, बाप रे बाप, 1906)

जासूस और व्यंग्य जासूस के अंकों में कविताएँ कभी-कभी छपती थीं जिनमें वक्रोक्ति और व्यंग्य ही प्रधान है। कविताओं में आम बोलचाल की भाषा का उत्कृष्ट समागम, निम्नलिखित पंक्तियों से मिलता है। पड़वा (भैंस का बच्चा), कडुवा (कड़वा), भडुवा (वैश्यावृत्ति), गडुवा (गड्ढा) जैसे भोजपुरी शब्द पूर्वांचल के लोगों में अपनी पैठ बनाने के लिए ही काफी थे, क्योंकि पूर्वांचल माटी की मातृभाषा भोजपुरी है जो की हिंदी की बहन के सामान है। गहमरी जी ने व्यंग्यात्मक कविताओं को उर्दू शब्दों में भी बखूबी पिरोया था। 'शेख चिल्ली का ढंग' 1915 (निगम पंच लिखित) कविता स्मरणीय है।

दुनिया में अकले दो हैं नहीं तीसरी का गम।
आधी अक्ल में सब रहें व डेढ़ अक्ल में हम।
पैसा हो जिसके पास वो है भैंस का पड़वा।
या बोलने में होवे निरा मिर्च सा कडुवा।।
दिन रात उसके पास रहे भांड़, व भडुवा।
पर शुद्ध सदा तीरयों के पानी का गहुवा।।
कुछ दोष नहीं जब कि हो आवाज छमाछम।
आधी अक्ल में सब रहें व डेढ़ अक्ल में हम।।
करते रहो जरूर ही बच्चों की शादियाँ
ऊपर लदाओ खूब सी खर्चो की लादियाँ
विधवा बने बनें सही ये शाहजादियाँ
कम उम्र की शादी के बिना नर हैं मादियाँ
इस चाल पुरानी में जरा भी नहीं शरम ।
आधी अक्ल में सब रहें व डेढ़ अक्ल में हम।

'सर्वेगुणाः कांचनमाश्रयन्ते' तथा 'बाल-विवाह' संबंधी सामाजिक चेतना, जिस रूप में 'जासूस' में प्राप्त है वैसी अन्यत्र सुलभ नहीं है। जासूस के स्तम्भ यो तो 'जासूस' में कहानी की नदी ही हरहराती है। परन्तु अपनी समकालीन साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक गतिविधियों पर भी 'जासूस' की पैनी दृष्टि थी। प्रायः प्रत्येक अंक में 'समालोचना', 'साहित्य-संवाद', 'नोट्स', 'न्यूज', 'नये-नये समाचार' नामक स्थायी स्तम्भ हैं।

गोपालराम गहमारी का एक पूर्वकालीन काम था 'नए बाबू'। यह लघु उपन्यास प्रायः पारंपरिक हिन्दू प्रथाओं के त्याग के खिलाफ, विशेष रूप से विधवा पुनर्विवाह की अनुमति के खिलाफ एक हास्यास्पद प्रकार की काल्पनिक विचित्रता से परिपूर्ण है। कहानी में एक पश्चिमीकृत भारतीय युवा का वर्णन किया गया है जो विधवा पुनर्विवाह का समर्थन करता है, और शायद स्वाभाविक रूप से, वह पश्चिमी सभ्यता से प्रेरित है। हिन्दू परंपरा के खिलाफ वह अपने मित्र की शादी अपनी विधवा बहन से करवाता है। मित्र इसमें सहमत होता है, उनकी यही कोशिशें आखिरकार सफल होती हैं, परन्तु दुर्भाग्यवस्था सुधारक बाद

की घटना से आहत होकर आत्महत्या के लिए नर्मदा नदी में कूद जाता है। कहानी में विवादपूर्ण भावनाओं को एक नुकीले व्यंग्य की तरह सुनाया गया है, जो काफी प्रभावी था। इस उपन्यास की सफलता में पात्र प्रतिरूपण में लेखक के सिर्फ लेखन कौशल से नहीं आती है, बल्कि उसके आरोपों को गढ़ने और पश्चिमी तौर तरीकों पर उसकी तीखी टिप्पणियों की तीव्रता से दिखती है।

प्रस्तुति स्पष्ट रूप से वर्तमान परिपेक्ष्य में एक-पक्षपातपूर्ण है और समझने में आसान है, गोपाल गहमरी ने एक के बाद एक ऐसा काम दिखाया है जिसमें उसने चरित्र रूचि को विकसित करने की वास्तविक क्षमता दिखाई है। धार्मिक महिला पात्रों को बार-बार पारंपरिक तरीके से उनकी परिस्थिति की शिकायत होती है, लेकिन इन परिस्थितियों में पारंपरिक का एक नया महत्व होता है। यह न केवल बिना सोचे-समझे अपनाया गया पारंपरिक नहीं है, बल्कि विदेशी संस्कृति के सामने पहली बार उचित किया गया पारंपरिक तौर तरीका है। उपयोग की गई भाषा की शैली भी इस संबंध में महत्वपूर्ण नहीं है। इस लेख में भाषा की शैली शास्त्रीय संस्कृतीकरण के साथ, यह भारतीयता के रूप में हिंदी रुप को दर्शाती है।

'तीन पतोहू बंबई 1904' उस दीर्घकालीन, सामान्यतः संरक्षणशील काम का प्रतिनिधित्व करता है, और यह अपने आत्मिक महत्व के कारण और उसी गोपाल राम की कलम से होने के कारण विचार ने योग्य है जिन्होंने पहले हास्यास्पद 'नए बाबू' लिखा था। गोपाल राम यहाँ परंपरागत संयुक्त परिवार के सम्मान की रक्षा करने की चिंता करते हैं, लेकिन अब वे पश्चिमी प्रभावों के प्रति अपने दृष्टिकोण में वह सहिष्णुता दिखाते हैं जो उनके पूर्वकालीन काम में पूरी तरह से अनुपस्थित थी। इस उपन्यास में सबसे दुष्ट पात्र वे हैं जो पश्चिमी शिक्षा का सबसे ज्यादा तिरस्कार करते हैं एक कलकत्ता के छात्र जिनमें संयम, पुत्रभक्ति और आत्मत्याग की गुणवत्ता का प्रथम नायक होता है, और एक कलकत्ता-प्रशिक्षित वकील जिन्होंने परिवार की संपत्ति को बर्बाद करने में मुख्य भूमिका निभाई है। इस उपन्यास में व्यक्त दृष्टिकोण इस प्रकार के उलझने को आईने की तरह दिखाने वाला एक सुधारक है, जिसको गोपाल राम ने सामान्य दृष्टिकोण से अपने निर्णय की मूल दलील के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके लेखन को कुल मिलाकर द्वैध दृष्टिकोण वाला कहा जा सकता है।

'जासूस' के संपादक श्री गोपालराम गहमरी के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि द्वितीय उत्थान के आरंभ में हमें बाबू गोपालराम गहमरी बंगभाषा के गार्हस्थ्य उपन्यासों के अनुवाद में तत्पर मिलते हैं। भाषा उनकी चटपटी और वक्रतापूर्ण है। ये गुण लाने के लिए कहीं-कहीं उन्होंने पूरवी शब्दों और मुहावरों का भी बेधड़क प्रयोग किया है। उनके लिखने का ढंग बहुत ही मनोरंजक है। 24 दिसम्बर सन् 1907 ई. के में बाबू बालमुकुन्द गुप्त के स्वर्गवास पर जासूस की जो टिप्पणी 'समाचार और सम्मति' शीर्षक स्तम्भ में प्रकाशित हुई, वह यहाँ दृष्टव्य है-

संपादक का स्वर्गवासः हिन्दी के सच्चे हितैषी, भाषा संपादक शिरोभूषण हमारे परम मित्र कृपालु बाबू बालमुकुन्द का स्वर्गवास हो गया। भारतवर्ष के हिन्दी प्रेमी, हिन्दी पाठक और हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी, उर्दू, मराठी समाचार. पत्रों में बाबू बालमुकुन्द की मृत्यु पर महीनों शोक मनाया गया। देश भर के सुविध महरजनों ने बाबू साहब की आत्मा की सद्गति और अनेक आत्मीय स्वजनों के प्रबोध के लिए परमात्मा से मंगल प्रार्थना की। आज हिन्दी साहित्य में उनके अभाव की पूर्ति नहीं हो सकती। हम भारतमित्र के मालिक बाबू जगन्नाथ दास को हृदय से धन्यवाद देते हैं कि गुप्त जी के प्रिय पुत्र को आश्रय देकर कृपा की है।

जासूस के विविध अंकों से स्पष्ट होता है कि बीसवीं सदी के प्रारंभिक काल में राजनीतिक और सामाजिक चेतना से सम्पन्न यह पत्र हिन्दी साहित्य की अविस्मरणीय सेवा करता रहा है।

निष्कर्ष

पूर्वांचल में स्वतंत्रता संग्राम एवं समाचार पत्र, दर्ज इतिहास का एक हिस्सा है, फिर भी बड़ी संख्या में निस्वार्थ, बहादुर स्वतंत्रता सेनानी और संपादक रहे हैं जिनके योगदान का उल्लेख नहीं किया जा सका या उनकी उपेक्षा की गई। मीडिया के बदलते हुए परिदृश्य में इन समाचार पत्रों और स्वतंत्रता सेनानियों का उल्लेख अति महत्वपूर्ण है। इन गुमनाम नायकों के बिना भारत के स्वतंत्रता संग्राम की कहानी अधूरी है।

किसी देश की स्वतंत्रता उसके नागरिकों पर निर्भर करती है। समाचार पत्रों ने समाज के लोगों पर जो सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ा, वह यह है कि उन्होंने दूसरों को अपने अधिकारों को समझने, संघर्ष में शामिल होने और सत्ता में बैठे लोगों के खिलाफ खड़े होने के लिए प्रेरित किया। इन पत्रों के माध्यम से उन्होंने दूसरों को अपने समाचार-पत्रों के कारण ही देशवासी राष्ट्रवाद और देशभक्ति की भावनाओं के बंधन में बँधे। जासूस पत्रिका हिंदी साहित्य का ऐसा नवाचार थी जिसे साहित्य साधकों और प्रेमियों का इतना स्नेह मिला की पत्रिका प्रकाशनोपरांत उपलब्ध होने के पहले ही बिक जाती थी। गोपालराम गहमरी इस विधा के उन पुरोधाओं में से हैं जिन्होंने न केवल इसकी नींव रखी बल्कि हिंदी भाषा की साहित्य-संपदा को समृद्ध और लोकप्रिय किया। उनकी पत्रिका में छपने वाले लेखों ने पाठको के अंतर्मन में रोमांच और जिज्ञासा की उन सतहों को छुआ जहाँ सामान्य साहित्य की पहुँच कठिन थी। परतंत्रता के दौर में जनमानस में क्रांतिकारी चेतना फूँकने, जागरण का कार्य भी जासूस पत्रिका ने किया।

एक गाँव से प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका ने साहित्य जगत में अपना अलग स्थान बनाया। यह गोपालराम गहमरी जी का ''जासूस'' के लिए समर्पण ही था जो पाठकों का स्नेह पाने और उनके मन में अपनी छाप छोड़ने में वह सफल रहा। ऐसे विरले साहित्य साधक को साहित्येतिहास में कदाचित वह स्थान नहीं प्राप्त हुआ जिसका जासूस अधिकारी था।

सन्दर्भ

1. Devi, M. (2018). भाषा प्रसार में समाचार-पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका. *Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education*, 15 (9), 517-520. doi:DOI: 10.29070/ JASRAE
2. वही, पृष्ठ संख्या- 518
3. www.bl.uk. (n.d.)- (British Library) Retrieved May 27, 2022 from https://www.bl.uk/collection-items/the-bengal-gazette-an-anglo-indian-newspaper
4. आ. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 497.
5. कृष्ण, स. (2011, जुलाई 7). https://web.archive.org/web/20140107150147/http://www.gajipur.blogspot.in/2 011/07/blog-post_6468.html
6. गहमरी, ब. ग. (1906 अप्रैल 1). बाप रे बाप जासूस, P. 1.

7. गहमरी, ब. ग. (1906, अप्रैल 1). फाग जासूस, P. 1.

8. गहमरी, ब. ग. (1915, दिसम्बर), शेख चिल्ली का ढंग. (जासूस) P. 1.

9. गहमरी, ब. ग. (द.क.). वैश्योपकारक अंक 12, वर्ष 2.

10. विवेस पैनोरमा. (2015, जुलाई 22). Retrieved May 27,2022 from https://www.vivacepanorama.com/history-and-development-of-indian-press-and-press-acts/

11. By Gopal Ram Gahmari, Calcutta, 1896 (1,000 copies)

12. प्रताप नारायण मिश्र की स्मृति में (हिंदी संस्मरण) गोपालराम गहमरी

13. भारतेंदु हरिश्चंद्र (हिंदी संस्मरण): गोपालराम गहमरी

14. गोपालराम गहमरी की जासूसी कहानियाँ, संजय कृष्ण, प्रभात प्रकाशन, 2019, पृष्ठ संख्या 110-112

15. https://www.chaltapurza.com/gopal-ram-gahmari-father-of-the-hindi-detective-novel-people-who-learned-to-read-hindi/

16. https://hindikahani.hindi-kavita.com/HK-Gopalram-Gahmari.php

नवजागरण और भारतेंदुयुगीन पत्रकारिता

डॉ. दीनदयाल

हिन्दी साहित्य में आधुनिककाल भाव, भाषा, विचार और गद्य के लिए क्रांतिकारी रूप में आता है। आधुनिक काल की शुरुआत में भारतेंदु हरिश्चंद्र और नवजागरण का बोलबाला था। आधुनिक काल के युग-प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चन्द्र एक बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी था वे खड़ी गद्य के जनक होने के साथ-साथ जुझारू पत्रकार, सहृदय कवि प्रबुद्ध नाटककार, प्रौढ़ निबन्धकार एवं सशक्त आलोचक भी थे।

हिंदी नवजागरण की विद्वानों ने अनेक परिभाषाएँ दी हैं और उन्होंने नवजागरण का समय भी अलग-अलग माना है। जिसमें डॉ. रामविलास शर्मा भक्ति आन्दोलन को भी नवजागरण के रूप में देखते हैं; किन्तु 'हिंदी नवजागरण से अभिप्राय सन 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद भारत के हिंदी प्रदेशों में आए राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जागरण से है। हिंदी नवजागरण की सबसे प्रमुख विशेषता हिंदी प्रदेश की जनता में स्वातंत्र्य चेतना का जागृत होना है। इसका पहला चरण सन् 1857 का विद्रोह था। इसका दूसरा चरण भारतेंदु हरिश्चंद्र से शुरू हुआ और तीसरा चरण महावीर प्रसाद द्विवेदी से शुरू हुआ।

1857 के स्वतंत्रता संग्राम से ही सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण एवं राष्ट्रीय चेतना को उद्भूत करने के प्रयास प्रारम्भ हो गये थे। इस समय सम्पूर्ण भारतवर्ष पर अंग्रेजों का शासन तंत्र था। परिणामस्वरूप ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से निकलकर भारत की बागडोर रानी विक्टोरिया के हाथों में चली गयी। यहीं से एक ओर जहाँ अंग्रेजों की दमनकारी नीति में वृद्धि हुई वहीं दूसरी ओर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को भी तरह-तरह के दमनकारी कानूनों से बाधित और प्रतिबंधित करने की चाले चलीं गयीं। परंतु नवजागरणकाल के क्रांतिचेता लेखक-पत्रकार व नेतृत्व ने हर जोखिम जुर्माना और सजा सहकर स्वातंत्र्य मुक्ति की लौ को प्रज्ज्वलित रखा। भारत में उपनिवेश-विरोधी तथा स्वतंत्रता प्राप्ति की चेतना जाग्रत हुई। हताश-निराश भारतीय जनता में पुनः स्फूर्ति, जागृति लाने एवं भारतीय संस्कृति के महती पक्षों को जन-जन तक पहुँचाने में हिंदी पत्रकारिता का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के साथ-साथ पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के सामंजस्य ने भी हिन्दी पत्रकारिता के माध्यम से नवजागरण में विशिष्ट भूमिका निभाई।

यह मान्यता तो बहुत पहले से प्रचलित रही कि भारतेंदु हरिश्चंद्र के उदय के साथ ही हिंदी में एक नए युग का आरम्भ हुआ; किन्तु इस नए युग को 'नवजागरण' नाम देने का श्रेय हिंदी में डॉ. रामविलास शर्मा को है।[1]

अंग्रेज इतिहासकारों ने पूरे भारतीय समाज को अनेक भ्रमजालों से आच्छादित कर रखा था। हिंदी पत्रकारिता ने इन भ्रमजालों को काटने का भी काम किया। अंग्रेज इतिहासकारों ने प्रचारित किया था कि भारत एक राष्ट्र नहीं है, हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति और जीवन पद्धति में बुनियादी अंतर है। ब्रिटिश राज में मुस्लिम राज प्रगतिशील था। ब्रिटिशराज ने ही भारत को वैधता प्रदान की, ईसा धर्म ही श्रेष्ठ है, ग्रामीण

जीवन का देश, धर्म राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं, वे सर्वथा स्वतंत्र इकाई हैं। अंग्रेज ही भारत में शान्ति और सुव्यवस्था लाए, अंग्रेज हमारे माई बाप हैं।''[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी पत्रकारिता ने पहली बार भारतीयों में वैज्ञानिक समझ विकसित की। परिमाण गुणवत्ता तथा श्रेष्ठ प्रतिमानों की दृष्टि से हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ गौरव की अधिकारिणी बनीं फलस्वरूप लीक से हटकर तेजस्वी पत्रकारिता का स्वरुप उभरकर सामने आया। उपनिवेश विरोधी विचारधारा ने उसका वैचारिक आधार निर्मित किया और राष्ट्रीय नवजागरण में श्रेष्ठ आदर्श एवं जीवन मूल्य स्थापित किए।

भारतेंदु युग का प्रारंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा संपादित साहित्यिक पत्रिका 'कविवचन सुधा से होता है। इसके माध्यम से हिंदी भाषा के परिष्कार एवं खड़ी बोली हिंदी गद्य को व्यवस्थित रूप देने के साथ-साथ राष्ट्रीयता की भावना का भी व्यापक स्तर पर प्रचार प्रसार हुआ। उन्होंने स्वदेशी के प्रचार एवं ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीतियों का विरोध करने के लिए अपनी पत्रकारिता को माध्यम बनाया एवं स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु राष्ट्रीय चेतना को जगाने के लिए भारतीयों का आहवान किया। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी अपनाने पर जोर, आर्थिक विकास, सामाजिक बुराईयों को दूर करना, आधुनिक प्रगति से अवगत कराना, शिक्षा के प्रचार प्रसार आदि विषयों को इसमें महत्व दिया जाता था। इसमें साहित्य के साथ साथ सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियों व नवजागरण से संबंधित सामग्री भी प्रकाशित होती थी। इसमें ब्रिटिश शासन की कठोर नीतियों की कटु आलोचना एवं स्वाधीनता के लिए प्रेरित करने वाले लेखों की प्रधानता रहती थी एवं इसका तो आदर्श वाक्य ही 'स्वत्व निज भारत गहै था।''[3]

''इसी क्रम में भारतेंदु की राष्ट्रीय चेतना की भावना एवं उत्कृष्ट पत्रकारीय कौशल से प्रभावित होकर अनेक पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं, जिनमें हिंदी प्रदीप (1877), भारत मित्र (1878), सारसुधानिधि (1879), केसरी (1881), ब्राह्मण (1883), हिंदोस्थान (1855) आदि प्रमुख थे'' ।[4]

1883 में प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' पत्रिका निकाली, जिसमें तत्कालीन प्रतिष्ठित लेखकों के लेख प्रकाशित होते थे। ''स्वदेश-प्रेम, हिंदी भाषा प्रेम के अतिरिक्त इसमें तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं जैसे दहेज की समस्या, अशिक्षा, धार्मिक कट्टरता, राजनीतिक जागरुकता की कमी, नारी शिक्षा की आवश्यकता आदि के लेख प्रकाशित होते थे। इसके माध्यम से लोकमत को समाज एवं ब्रिटिश सरकार तक निर्भीकता से पहुँचाने का प्रयास भी किया गया, जिससे इसे जनमानस में पर्याप्त लोकप्रियता मिली। भारतीयों की समस्याओं के प्रति ब्रिटिश अधिकारियों का ध्यान आकृष्ट करने एवं भारतीयों में राष्ट्रीय जागृति पैदा करने के लिए 1885 में अंग्रेजी त्रैमासिक पत्र 'हिंदोस्थान' का प्रकाशन किया गया। बाद में यह हिंदी एवं उर्दू में भी प्रकाशित होने लगा।''[5]

हिंदी पत्रकारिता का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि प्रारंभ में ये पत्र-पत्रिकाएँ रानी विक्टोरिया आदि की घोषणाओं, अंग्रेजी शिक्षा, न्याय व्यवस्था, प्रजातान्त्रिक पद्धति आदि के प्रति असीम आशा वान और विश्वासी थीं। परंतु 1870 के बाद की पत्रकारिता का स्वर एकदम बदला हुआ और नितांत प्रतिरोध और विद्रोही रूप देखने हैं। बालकृष्ण भट्ट 'हिंदी प्रदीप' की भूमिका में लिखते हैं, ''हमारा कथन है राजभक्ति और प्रजा का हित, दोनों का साथ कैसे निभ सकता है? जैसे हँसना और गाल फुलाना, बहुरी चबाना और शहनाई का बजाना एक संग नहीं हो सकता.. राजभक्ति के फल निसंदेह पहले देखने में बड़ा मीठा है पर परिणाम महामदकारी और रुखा है। इसे बहुत खाते-खाते मनुष्य क्षीण वीर्य, क्षीण तेज हो जाता है। दूर करने को तदवीर करो, कुछ कारगर नहीं होती.. प्रजा के हित का फल यद्यपि देखते कडुआ, फीका और अरोचक है पर अंत में बड़ा उत्तेजक और पौष्टिक है। इस फल के खाने वाले देशोपकारी, सर्वजन हितैषी और बड़े उदार प्रकृति के होते हैं।''[6]

भारतेंदुकालीन पत्रकारिता ने देश भक्ति और राजभक्ति को दो विपरीत छोर मानकर अंग्रेजी शासन की धज्जियाँ उड़ाई हैं। राष्ट्रभक्त संपादकों ने पत्रकारिता को व्यवसाय कभी नहीं माना और ही निम्न स्तरीय सामग्री का चयन किया है। एक-एक पत्रकार सदैव जन आंकाक्षाओं के प्रति वफादार है और राष्ट्रहित को सर्वोपरि माना है। यही कारण है कि जैसे-जैसे राष्ट्रीयता की भावनाएँ हिंदी प्रदीप, केसरी, अभ्युदय, प्रताप, कर्मवीर, सत्याग्रही, विश्वमित्र, आज और विशाल भारत आदि इस शृंखला की मजबूत कड़ियाँ हैं।

भारतेंदुकालीन पत्रकार-लेखकों ने ब्रिटिश शासन के जुल्म और जबरदस्ती का खुलेआम विरोध किया है और निर्भीक होकर सत्य को अभिव्यक्ति दी है। अंग्रेजी शासकों की एक-एक मनोग्रंथि से वे अवगत हैं, जैसा कि बाल कृष्ण भट्ट जी लिखते हैं- ''अंग्रेजी शासनकर्ताओं का जो ढंग शासन करने का है उससे यह कभी संभव नहीं कि राजा-प्रजा दोनों में मेल रहे और दोनों एक दिल तो कभी होंगे नहीं..... वहाँ यह आशा करना कि अपनी नीति से मुँह मोड़ हमें वो इतना बलवान कर देंगे कि हम अपना शासन अपने आप करने लगे. नितांत भूल है।''[7]

''वस्तुतः भारत में राष्ट्रीय नवजागरण के साथ ही मानवतावादी चिंतन भी प्रारम्भ हो जाता है। बांग्ला के मूर्धन्य साहित्यकार शरच्चंद्र के अनुसार 'कोई भी शास्त्र, 'श्लोक, मन्त्र, और तंत्र मनुष्य से बड़ा नहीं है।''[8] हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के लेखों तथा अन्य रचनात्मक विधाओं में भी मानवतावादी चिंतन, अनुभूतियों और सन्दर्भों को लेकर समझने-समझाने की चेष्टा की गयी है। उनकी हर भंगिमा मानवीय जीवन को प्रतिबिम्बित करती है। मानव के संघर्ष एवं दर्द को उकेरती है। ये पत्रिकाएँ ईश्वरीय सत्ता को भी मानवीय निकष पर प्रस्तुत कर मानव की क्षमता बौद्धिक श्रेष्ठता को उद्घाटित करती हैं, ''जिस कसौटी परिभाषा और सूत्र के अनुसार हम लोग आपस में एक दूसरे को जाँचते परखते हैं, यदि वहाँ भी उसे परखे तो ईश्वरता की सब कलई खुल जाए।''[9]

इतना ही नहीं 'तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने पुरातन धारणाओं का विरोध कर पराधीन भारतीय प्रजा को प्रजातांत्रिक पद्धति और मानवतावाद का पाठ भी पढ़ाया जिन लोगों का यह प्रण है कि राजा और ईश्वर एक है तो फिर क्यों हमें यथोचित स्वतंत्रता नहीं दी जाती? क्यों हमारी पुकारों की सुनवाई नहीं होती? हिंदी के दफ्तर के लिए कहते-कहते हमारा गला सूख गया। पीड़ित प्रजा.. बार-बार प्रार्थना करती है, सुनवाई क्यों नहीं होती?[10]'' भारत जीवन ही नहीं उचित वक्ता ने भी मानव समानाधिकार को महत्त्व देते हुए अंग्रेजी शासकों को स्पष्ट जता दिया था, ''ब्रिटिश जाति के प्रति हिन्दुस्तानियों की अगर आप भक्ति चाहते हैं, तो विचारकाल में वर्ण, जाति, धर्म पर दृष्टि न रखिये। आप लोग सदा यह ध्यान रखिएगा कि ब्रिटिश राज्य में जितनी प्रजा बसती है विचारकाल में विचारपति के सामने सभी बराबर हैं।[11]'' साथ ही हम देखते हैं कि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने अपनी समस्त सामग्री में यही बोध कराया था, कि आधुनिकता न कोरी विलायत की नक़ल या विदेशी शिल्प में है, न सच्ची भारतीयता कूपमंडूकता और परंपरा के अन्धानुकरण में है। बकौल बाल कृष्ण भट्ट ''नूतन सभ्यता के अनुयायी तो यही पुकार मचा तो रहे हैं कि उस महत्त्व को पुनः प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है इंग्लिसाइज्ड हो जाना। जब तक हमारी किसी एक बात में लेशमात्र भी हिंदुस्तानीपन बचा रह जायेगा तब तक हम तरक्की नहीं कर सकेंगे। जब तक हम अपने को हिन्दुस्तानी मानते रहेंगे तब तक गुलामी का ख्याल हमसे दूर न होगा किन्तु पहले के महत्त्व को पाने के लिए जातीयता का आना बड़ा आवश्यक है।''[12]

नवजागरणकालीन सभी पत्र-पत्रिकाओं में अतीत की ज्ञान संपदा और गौरवमयी सांस्कृतिक विरासत के प्रति गहरा लगाव दृष्टिगत होता है। साथ ही भारत की श्रेष्ठ मान्यताओं को नकार कर पश्चिम अन्धानुकरण नहीं किया। पश्चिम से केवल वही तत्व ग्रहण किए जिनसे भारत को आधुनिक रूप देने में सहायता मिल सकती थी।

हिंदी पत्रकारिता ने सदैव स्वदेशी चिंतन को सर्वाधिक महत्व दिया। 'कविवचनसुधा' के सम्पादक भारतेंदु ने निद्रालस में डूबे देशवासियों को उठाकर आगाह किया था, ''हे देशवासियो! इस निद्रा से चौंको इनके (अंग्रेजों) के भरोसे मत फूले रहो.... ये विद्या (अंग्रेजी शिक्षा) कुछ काम न आवेगी। यदि तुम हाथ व्यापार सीखोगे तो तुम्हें कभी दैन्य न होगा, नहीं तो अंत में यहाँ का सब धन विलायत चला जायेगा और तुम मुँह बायें रह जाओगे।''[13] 'समय विनोद' पत्रिका में आजीविका के लिए केवल सरकारी नौकरी पर निर्भर न रहकर विद्या बुद्धि व कौशल को अपनाने की सीख दी है जैसा कि भारतेंदु लिखते हैं, ''अब बिना ऐसा उपाय किये काम न चलेगा कि रुपया भी बढ़े और वह रुपया बिना बद्धि के न बढ़ेगा। भाइयो राजा-महाराजाओं मुँह मत देखो, मत यह आशा रखो कि पंडित जी कथा में ऐसा उपाय बताएँगे की देश का रुपया और बुद्धि बढ़े। तुम आप ही कमर कसो।''[14]

अतः निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि भारतेंदुयुगीन पत्रकारिता ने विज्ञान और साहित्य, आधुनिकता और परम्परा, शास्त्र और लोक का अद्भुत सामंजस्य स्थापित किया है। राष्ट्रप्रेम और देश भक्ति भारतेंदु काल के लेखन में कूटकूट कर भरी है लिहाजा भारतेंदुयुगीन पत्रकारिता साहित्येतिहास में एक अप्रतिम उच्चादर्श स्थापित करती है।

संदर्भ सूची

1. विकिपीडिया
2. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, संपादक- विपिन चंद्र पृष्ठ संख्या- 475
3. हिंदी पत्रकारिता- इतिहास एवं स्वरूप, शिव कुमार दुबे, पृष्ठ संख्या- 86
4. भारतेंदुयुगीन हिंदी पत्रकारिता, पृ संस्करण-1986, पृष्ठ संख्या- 44
5. हिंदी पत्रकारिता- विविध आयाम, वेद प्रताप वैदिक, संस्करण-2002, पृष्ठ संख्या- 1088
6. हिंदी प्रदीप, बालकृष्ण भट्टर मित्र पृष्ठ संख्या- 2.
7. हिंदी प्रदीप, बालकृष्ण भट्ट, जून-1906, पृष्ठ संख्या- 2
8. नवनीत, दिसंबर सन् 1985
9. भट्ट निबंधावली, धनंग भट्ट, पृष्ठ संख्या- 13
10. भारत जीवन, मार्च सन् 1887 पृष्ठ संख्या- 3
11. उचित वक्ता, राम, 1880, अंक-9.
12. हिंदी प्रदीप, बालकृष्ण भट्ट, सन् 1906, पृष्ठ संख्या- 3
13. भट्ट निबंधावली, पृष्ठ संख्या- 11
14. बाला बोधिनी, भारतेंदु हरिश्चंद्र, जनवरी सन् 1878

2024 लोकसभा चुनाव अभियान के दौरान सोशल मीडिया पर राजनीतिक विमर्श

डॉ. तुंगनाथ मौआर

2024 का लोकसभा चुनाव भारतीय राजनीति में एक निर्णायक क्षण है जिसमें सोशल मीडिया ने राजनीतिक विमर्श को आकार देने में केंद्रीय भूमिका निभायी है। यह शोध मतदाताओं से जुड़ने, प्रचार अभियान चलाने और जनमत को प्रभावित करने के लिए फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम और व्हाट्सएप जैसे प्लेटफॉर्म पर राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों द्वारा अपनाई गई रणनीतियों की आलोचनात्मक जाँच करता है। अध्ययन राष्ट्रवाद, आर्थिक सुधार और सामाजिक न्याय सहित राजनीतिक संदेश में प्रमुख विषयों की पड़ताल करता है और विश्लेषण करता है कि कैसे डिजिटल और मल्टीमीडिया सामग्री ने इन आख्यानों को बढ़ाया है। इसके अतिरिक्त, यह सूचनाओं के प्रसार और मतदाता की धारणाओं पर इसके प्रभाव के साथ-साथ चुनाव को ध्रुवीकृत करने में सोशल मीडिया की भूमिका की जाँच करता है। शोधपत्र भारतीय चुनावों में सोशल प्रतिध्वनि कक्ष मीडिया द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों और अवसरों पर चर्चा करके समाप्त होता है और राजनीतिक विमर्श की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए सुधारों का सुझाव देता है। यह विश्लेषण डिजिटल अभियान की गतिशीलता और भारत में चुनावी राजनीति के भविष्य के लिए इसके निहितार्थों के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

मुख्य शब्दः सोशल मीडिया, राजनीतिक विमर्श, 2024 लोकसभा चुनाव, फेक न्यूज, डिजिटल अभियान

परिचय

सोशल मीडिया ने राजनेताओं नेताओं, दलों और मतदाताओं के बीच वास्तविक समय की सहभागिता के लिए एक मंच प्रदान करके समकालीन राजनीति के परिदृश्य को मौलिक रूप से बदल दिया है। डिजिटल युग में, फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम और यूट्यूब जैसे प्लेटफॉर्म राजनीतिक अभियानों के लिए आवश्यक उपकरण बन गए हैं, जिससे चुनावी जन संचार हेतु लक्षित संदेश और मतदाता जुटाना संभव हो गया है। राजनीति में सोशल मीडिया का महत्व दुनिया भर में देखा जा सकता है, लेकिन 700 मिलियन से अधिक इंटरनेट उपयोगकर्ता वाले देश भारत में इसकी भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण है (IAMAI, 2023)।

सन्- 2024 का लोकसभा चुनाव राजनीतिक विमर्श को आकार देने में डिजिटल प्लेटफॉर्म के बढ़ते महत्व को रेखांकित करता है। इस चुनाव में सोशल मीडिया की अभूतपूर्व भागीदारी देखने को मिलती है क्योंकि विभिन्न राजनीतिक दलों ने भारत के युवा मतदाताओं से जुड़ने का कोई अवसर प्रयास नहीं छोड़ा है। सोशल मीडिया अब चुनाव में एक पूरक उपकरण नहीं बल्कि आधुनिक राजनीतिक अभियानों का एक केंद्रीय तत्व है, जो मतदाताओं तक सीधी पहुँच प्रदान करता है और जनमत को आकार देने में मदद करता

है (मेहता, 2020)। इस संदर्भ में, 2024 के चुनाव राजनीति और डिजिटल प्रौद्योगिकी के प्रतिच्छेदन का अध्ययन करने का एक अनूठा अवसर प्रदान करते हैं।

इंटरनेट और मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया (IAMAI. 2023) के अनुसार, सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं में साल-दर-साल 10 % की वृद्धि हुई है। इस उछाल ने राजनीतिक दलों को अपने संदेशों को अधिक कुशलता से संप्रेषित करने में सक्षम बनाया है, साथ ही मतदाताओं को राजनीतिक चर्चाओं में सक्रिय रूप से शामिल होने, समाचारों तक पहुँचने और तुरंत राय साझा करने में सक्षम बनाया है। हालाँकि, इस बढ़ी हुई कनेक्टिविटी ने नई चुनौतियों भी पेश की हैं, विशेष रूप से गलत सूचना, ध्रुवीकरण और डेटा के नैतिक उपयोग से संबंधित।

भारतीय चुनावों में सोशल मीडिया की भूमिका

भारतीय राजनीति में सोशल मीडिया का उपयोग पिछले एक दशक में काफी विकसित हुआ है, खासकर 2014 के आम चुनावों के बाद से। 2014 के लोकसभा चुनावों को अक्सर भारतीय राजनीतिक प्रचार में एक महत्वपूर्ण मोड़ माना जाता है, जहाँ नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भारतीय जनता पार्टी (बीजेपी) ने व्यापक दर्शकों तक पहुँचने के लिए फेसबुक और ट्विटर जैसे प्लेटफार्मों का प्रभावी ढंग से उपयोग किया। डिजिटल आउटरीच पर ध्यान केंद्रित करने वाले मोदी के अभियान ने राजनीतिक संदेश के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में पारंपरिक मीडिया से सोशल मीडिया में बदलाव को चिहिनत किया (मेहता, 2020)। सोशल मीडिया की शक्ति का दोहन करने में भाजपा की सफलता ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC) सहित अन्य राजनीतिक दलों को बाद के चुनावों में इसी तरह की रणनीति अपनाने के लिए प्रेरित किया।

2019 के लोकसभा चुनावों तक सोशल मीडिया सभी प्रमुख दलों के लिए राजनीतिक अभियानों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया था। सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म पर राजनीतिक चर्चा अभूतपूर्व स्तर पर पहुँच गई, जिसमें पार्टियाँ वायरल कंटेंट बनाने, मतदाताओं से सीधे जुड़ने और राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण जैसे प्रमुख मुद्दों पर ध्यान केंद्रित की 2024 के चुनावों में सोशल मीडिया ने और भी ज्यादा अहम भूमिका निभाया है। इंटरनेट की बढ़ती पहुँच, खास तौर पर ग्रामीण इलाकों में, और किफ़ायती स्मार्टफोन के उदय ने सोशल मीडिया को लाखों भारतीयों के लिए समाचार और राजनीतिक जानकारी का प्राथमिक स्रोत बना दिया है (मेहता, 2020)

सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म

- **फेसबुक** भारत में सबसे ज्यादा इस्तेमाल किए जाने वाले सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म में से एक है, जिसके 400 मिलियन से ज़्यादा उपयोगकर्ता हैं (गुप्ता, 2023)। राजनीतिक दल लंबे-चौड़े पोस्ट वीडियो और रैलियों और भाषणों की लाइव स्ट्रीम शेयर करने के लिए फेसबुक का इस्तेमाल करते हैं। फेसबुक का एल्गोरिदम, जो जुड़ाव को बढ़ावा देता है, राजनीतिक सामग्री को वायरल होने में मदद करता है, जिससे ज्यादा से ज्यादा लोग इसे देख पाते हैं।

- **ट्विटर (X)** राजनीतिक नेताओं पत्रकारों और प्रभावशाली लोगों के लिए पसंदीदा मंच बन गया है। इसका इस्तेमाल अक्सर वास्तविक समय के अपडेट, संक्षिप्त टिप्पणी और राजनीतिक बहस के लिए किया जाता है। ट्विटर की हैशटैग सुविधा पार्टियों और नेताओं को उनके राजनीतिक एजेंडे के साथ तालमेल बिठाने वाले कथानक और ट्रेंड विषय बनाने में सक्षम बनाती है (गुप्ता, 2023)

- **इंस्टाग्राम** विजुअल कंटेंट के लिए एक प्लेटफ़ॉर्म के रूप में तेज़ी से विकसित हुआ है, जो ख़ास तौर पर युवा मतदाताओं को आकर्षित करता है। राजनीतिक दल छवियों, लघु वीडियो और लाइव कहानियों के लिए इंस्टाग्राम का उपयोग करते हैं जो उम्मीदवारों को मानवीय बनाते हैं और मतदाताओं के साथ, अधिक व्यक्तिगत संबंध बनाते हैं (गुप्ता, 2023)
- **व्हाट्सएप**, हालाँकि एक पारंपरिक सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म नहीं है, लेकिन सामूहिक वार्ता और सीधे संदेश के माध्यम से राजनीतिक सामग्री के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अपने एन्क्रिप्टेड मैसेजिंग फीचर के साथ व्हाट्सएप का राजनीतिक प्रचार के लिए व्यापक रूप से उपयोग किया गया है, हालाँकि गलत सूचना के बारे में चिंताओं ने राजनीति में इसके नैतिक उपयोग के बारे में सवाल उठाए हैं। (गुप्ता, 2023)।

राजनीतिक अभियान

भारत में राजनीतिक दलों, खासकर भाजपा और कांग्रेस ने अपनी अभियान रणनीतियों में सोशल मीडिया को पूरी तरह से एकीकृत कर लिया है। भाजपा, जिसे अक्सर डिजिटल अभियान में अग्रणी माना जाता है, मतदाताओं को जोड़ने के लिए सोशल मीडिया के उपयोग में लगातार अग्रणी रही है। 2014 के चुनावों में, मोदी की अभियान टीम ने स्वयंसेवकों की एक डिजिटल सेना बनाई, जिन्होंने सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर पार्टी का संदेश फैलाया, जिससे मोदी उस समय ट्विटर पर सबसे अधिक फॉलो किए जाने वाले राजनेता बन गए (जैन, 2021)। पार्टी द्वारा डेटा एनालिटिक्स और माइक्रो-टारगेटिंग के उपयोग ने इसे विशिष्ट मतदाता जनसांख्यिकी के लिए संदेशों को तैयार करने की अनुमति दी, जिससे इसकी पहुँच और प्रभावशीलता बढ़ गई।

कांग्रेस, जो शुरू में डिजिटल युग के अनुकूल ढलने में धीमी थी, ने बाद में अपने सोशल मीडिया आउटरीच में महत्वपूर्ण प्रगति की है। 2019 के चुनावों में कांग्रेस ने अपनी डिजिटल रणनीति को नया रूप दिया, जिसमें वायरल अभियान बनाकर और इंस्टाग्राम जैसे प्लेटफ़ॉर्म के माध्यम से युवा मतदाताओं से जुड़कर भाजपा के प्रभुत्व का मुकाबला करने पर ध्यान केंद्रित किया गया। राहुल गांधी सहित कांग्रेस नेताओं ने अपने समर्थकों से सीधे संवाद करने और भाजपा के आख्यानों को चुनौती देने के लिए अपनी सोशल मीडिया उपस्थिति बढ़ाई है। (जैन, 2021)

दोनों दलों ने सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर राजनीतिक विज्ञापन का भी इस्तेमाल किया है लक्षित विज्ञापनों पर लाखों खर्च किए हैं जो अलग-अलग मतदाता समूहों के लिए वैयक्तिकृत हैं। डेटा संचालित राजनीतिक अभियानों के उपयोग ने पार्टियों को ग्रामीण मतदाताओं, शहरी भतदाताओं, पहली बार मतदान करने वाले मतदाताओं और हाशिए के समुदायों के लिए विशिष्ट संदेश बनाने की अनुमति दी है, जिससे उनके अभियानों की दक्षता बढ़ गई है (जैन, 2021)

मतदाताओं के साथ जुड़ाव

भारतीय चुनावों पर सोशल मीडिया के सबसे महत्वपूर्ण प्रभावों में से एक है व्यक्तिगत सामग्री का उदय और मतदाताओं के साथ सीधा जुड़ाव। सोशल मीडिया राजनीतिक दलों को व्यक्तिगत सामग्री बनाने की अनुमति देता है जो विशिष्ट जनसांख्यिकी को आकर्षित करती है, जिससे मतदाता जुड़ाव बढ़ता है। उदाहरण के लिए, राजनीतिक दलों ने रैलियों भाषणों और साक्षात्कारों को प्रसारित करने के लिए फेसबुक और इंस्टाग्राम पर लाइव स्ट्रीम का उपयोग किया है जिससे मतदाताओं को वास्तविक समय में राजनीतिक नेताओं के साथ जुड़ने की अनुमति मिलती है (कौर, 2022)

लाइव स्ट्रीम के अलावा, लक्षित राजनीतिक विज्ञापन डिजिटल अभियानों की एक प्रमुख विशेषता बन गए हैं। ये विज्ञापन, अक्सर मतदाता डेटा के आधार पर अनुकूलित किए जाते हैं, जो व्यक्तिगत मतदाताओं से संबंधित विशिष्ट मुद्दों या चिंताओं को आकर्षित करने के लिए डिज़ाइन किए जाते हैं। डेटा एनालिटिक्स और एल्गोरिदम का उपयोग करके पार्टियाँ यह सुनिश्चित कर सकती हैं कि उनके विज्ञापन सही समय पर सही दर्शकों तक पहुँचें, जिससे मतदाता जुड़ाव की संभावना बढ़ जाती है (कौर, 2022)

2024 के चुनाव अभियान में सोशल मीडिया पर राजनीतिक चर्चा

चुनाव प्रचार के दौरान जनता की धारणा को आकार देने और संवाद को दिशा देने में राजनीतिक आख्यान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 2024 के लोकसभा चुनाव में, राजनीतिक दलों ने मतदाताओं को आकर्षित करने के लिए सोशल मीडिया पर अपने संदेशों को रणनीतिक रूप से तैयार किया है, जिसमें राष्ट्रवाद, आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण जैसे प्रमुख मुद्दों का इस्तेमाल किया गया है। पटेल (2023) के अनुसार, भाजपा ने आर्थिक समृद्धि और राष्ट्रीय गौरव की दृष्टि से ''नए भारत'' के आख्यान का प्रमुखता से उपयोग किया है। इस विषय को दृश्यों, नारों और मीम्स के माध्यम से पुष्ट किया गया है जो भारत को नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में एक उभरती वैश्विक शक्ति के रूप में चित्रित करते हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा और आत्मनिर्भरता पर केंद्रित राष्ट्रवाद की कथा विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर भाजपा के संदेश का केंद्र रही है।

दूसरी ओर, कांग्रेस ने आर्थिक असमानता और सामाजिक न्याय के मुद्दों के इर्द-गिर्द अपनी कहानी गढ़ी है। अपने सोशल मीडिया अभियानों में, कांग्रेस ने भारत में अमीर और गरीब के बीच बढ़ती खाई और आर्थिक असमानता को दूर करने में मोदी सरकार की विफलता को उजागर किया है। पार्टी का नारा ''भारत की आवाज़'' कांग्रेस को हाशिए के समुदायों और ग्रामीण भारत के चैंपियन के रूप में पेश करता है। पटेल (2023) के अनुसार, आम नागरिकों के सम्मुख खड़ी आर्थिक कठिनाइयों की कहानियों को साझा करके मतदाताओं की सामाजिक व आर्थिक समस्याओं का समाधान करने के संकल्प को प्रसारित किया है। भाजपा के ''राष्ट्रवादी गौरव'' और कांग्रेस के ''आर्थिक न्याय'' पर ध्यान केंद्रित करने के बीच का अंतर अलग-अलग तरीकों को दर्शाता है जिसमें राजनीतिक दल मतदाताओं के विभिन्न करने आकर्षित करने के लिए अलग-अलग तरीकों का उपयोग करते हैं। इन विरोधी कथाओं को प्रस्तुत करके, दोनों दलों का उद्देश्य अपनी एक अलग पहचान बनाना और चुनावी दौड़ में अपनी स्थिति को मजबूत करना है।

राजनीतिक प्रभाव और डिजिटल स्वयंसेवकों की भूमिका

2024 के चुनाव में राजनीतिक विमर्श केवल पार्टी नेताओं द्वारा ही नहीं, बल्कि राजनीतिक प्रभावितों और सोशल मीडिया स्वयंसेवकों द्वारा भी आकार दिया जाएगा। इन व्यक्तियों ने अपने विशाल ऑनलाइन अनुसरण के माध्यम से जनमत को आकार देने में महत्वपूर्ण प्रभाव प्राप्त किया है। सिंह (2023) दोनों प्रमुख दलों के राजनीतिक अभियानों में प्रभावशाली लोगों के बढ़ते महत्व पर चर्चा करते हैं, यह देखते हुए कि कैसे वे अक्सर संदेशों को अधिक भरोसेमंद और आकर्षक तरीके से व्यक्त करने में मदद करते हैं। विशेष रूप से मनोरंजन, खेल और डिजिटल सामग्री निर्माण क्षेत्रें से प्रभावशाली लोगों को युवा मतदाताओं तक पहुँचने के लिए राजनीतिक दलों द्वारा सूचीबद्ध किया गया है। ये प्रभावशाली लोग पार्टी की विचारधाराओं को बढ़ावा देते हैं, उम्मीदवारों का समर्थन करते हैं और प्रमुख चुनावी मुद्दों पर चर्चा उत्पन्न करते हैं। प्रामाणिकता और सापेक्षता की विशेषता वाली उनकी सोशल मीडिया उपस्थिति उन्हें व्यापक दर्शकों से जुड़ने की अनुमति देती है

पेशेवर प्रभावशाली लोगों के अलावा डिजिटल स्वयंसेवक राजनीतिक अभियानों का अभिन्न अंग बन गए हैं। सिंह (2023) इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि भाजपा और कांग्रेस दोनों ने डिजिटल स्वयंसेवकों की शक्ति का उपयोग किया है जो ऑनलाइन मतदाताओं से सक्रिय रूप से जुड़ते हैं, राजनीतिक संदेश साझा करते हैं, विपक्षी कथाओं का मुकाबला करते हैं और समर्थन जुटाते हैं। ये स्वयंसेवक वायरल सामग्री बनाते हैं, ऑनलाइन अभियान आयोजित करते हैं और पार्टियों को निरंतर डिजिटल उपस्थिति बनाए रखने में मदद करते हैं। ऐसा करने में, वे न केवल पार्टी के संदेशों को बढ़ाने में बल्कि टिप्पणियों, उत्तरों और चर्चाओं के माध्यम से मतदाताओं से सक्रिय रूप से जुड़ने में भी सक्रिय भूमिका निभाते हैं, इस प्रकार एक जीवंत ऑनलाइन राजनीतिक समुदाय बनाते हैं।

दृश्य और मल्टीमीडिया सामग्री का प्रभाव

सोशल मीडिया की दृश्य और मल्टीमीडिया क्षमताओं ने राजनीतिक संचार में क्रांति ला दी है। 2024 के लोकसभा चुनाव में, राजनीतिक दलों ने अपने संदेशों को आसानी से पचने योग्य, आकर्षक और साझा करने योग्य प्रारूप में व्यक्त करने के लिए मीम्स, वीडियो और इन्फोग्राफिक्स पर अधिक से अधिक भरोसा किया है। शर्मा (2023) राजनीतिक विमर्श को आकार देने में इन उपकरणों की महत्वपूर्ण भूमिका पर जोर देते हैं, खासकर भारत में, जहाँ सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं का दृश्य सामग्री के साथ उच्च स्तर का जुड़ाव है। मीम्स, जो अक्सर हास्य को राजनीतिक संदेश के साथ जोड़ते हैं, राजनीतिक विचारधाराओं को फैलाने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में उभरे हैं। जटिल मुद्दों को सरल बनाकर, मीम्स युवा मतदाताओं को आकर्षित करते हैं और वायरल सामग्री बनाने में मदद करते हैं जिसे विभिन्न प्लेटफार्मों पर व्यापक रूप से साझा किया जा सकता है, इस प्रकार राजनीतिक संदेशों की पहुंच का विस्तार होता है।

वीडियो सामग्री भी राजनीतिक संदेश मैं एक केंद्रीय तत्व बन गई है। भाषणों साक्षात्कारों, अभियान की घटनाओं की परदे के पीछे की झलकियों और दृश्य कथावाचन के वीडियो राजनीतिक नेताओं और मतदाताओं के बीच अधिक व्यक्तिगत संबंध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के लिए, मोदी के नेतृत्व और भारत के भविष्य के लिए उनके दृष्टिकोण को प्रदर्शित करने वाले वीडियो का भाजपा द्वारा उपयोग, हाशिए पर पड़े समुदायों की आवाज़ों पर ज़ोर देने और आर्थिक असमानता को उजागर करने वाले कांग्रेस के वीडियो के विपरीत है (शर्मा, 2023)। ये वीडियो, जिन्हें अक्सर अलग-अलग प्लेटफॉर्म के लिए तैयार किया जाता है, पार्टी के व्यापक संदेश का समर्थन करने वाले दृश्य आख्यान का निर्माण करके मतदाताओं को जोड़ने में मदद करते हैं। मल्टीमीडिया सामग्री, विशेष रूप से वीडियो और भीम्स के उपयोग ने राजनीतिक विमर्श को फिर से परिभाषित किया है, जिससे यह अधिक सुलभ, भरोसेमंद और मनोरंजक होने के साथ-साथ जानकारीपूर्ण भी है।

युवा सहभागिता

2024 के चुनाव में सोशल मीडिया की भूमिका की सबसे उल्लेखनीय विशेषताओं में से एक युवा मतदाताओं को जोड़ने की इसकी क्षमता है विशेष रूप से इंस्टाग्राम और स्नैपचौट जैसे प्लेटफार्मों के माध्यम से। वर्मा (2024) ने नोट किया है कि 2024 के चुनावों के परिणाम को निर्धारित करने में युवा वोट को तेजी से महत्वपूर्ण माना जा रहा है, जिसमें सोशल मीडिया राजनीतिक जुड़ाव के लिए प्राथमिक माध्यम के रूप में काम कर रहा है। युवा लोग, जो अक्सर पारंपरिक मीडिया से कटा हुआ महसूस करते हैं, राजनीतिक अभियानों के साथ बातचीत करने के लिए सोशल मीडिया को अधिक प्रत्यक्ष और भरोसेमंद मंच पाते हैं। इंस्टाग्राम अपनी दृश्य-संचालित सामग्री के साथ और स्नैपचैट, अपनी अस्थायी, कहानी-आधारित सामग्री

के साथ, युवा मतदाताओं तक पहुँचने के लिए विशेष रूप से प्रभावी हैं। ये प्लेटफ़ॉर्म राजनीतिक दलों को आकर्षक लघु-फ़ॉर्म सामग्री बनाने की अनुमति देते हैं जो युवाओं के हितों और चिंताओं, जैसे कि रोजगार, शिक्षा और सामाजिक न्याय के साथ प्रतिध्वनित होती है।

राजनीतिक दलों ने युवाओं की भागीदारी के महत्व को जल्दी से पहचाना है। भाजपा और कांग्रेस दोनों के पास इंस्टाग्राम अभियानों, इंस्टाग्राम रील्स और लाइव प्रश्नोत्तर सत्रों के माध्यम से युवा दर्शकों को लक्षित करने वाली समर्पित टीमें हैं। वर्मा (2024) इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि भाजपा की सोशल मीडिया रणनीति डिजिटल प्रभावशाली लोगों के माध्यम से युवाओं से जुड़ने पर केंद्रित है, जबकि कांग्रेस ने बेरोजगारी और छात्र ऋण जैसे मुद्दों पर चर्चा करने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग किया है, जो युवा मतदाताओं के लिए महत्वपूर्ण हैं। युवा मतदाताओं को आकर्षित करने के लिए संदेशों को अनुकूलित करके, दोनों दलों ने सफलतापूर्वक समर्थन जुटाया है, खासकर शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रें में जहाँ युवा आबादी सोशल मीडिया पर अत्यधिक सक्रिय है।

भारतीय लोकसभा चुनाव 2024 अभियान के दौरान राजनीतिक चर्चा में गलत सूचना और फर्जी खबरें

2024 के भारतीय लोकसभा चुनाव के इर्द-गिर्द राजनीतिक चर्चा में गलत सूचना एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन गई है। व्हाट्सएप, फेसबुक और ट्विटर जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर बढ़ती निर्भरता के साथ फर्जी खबरों को मतदाताओं के बीच तेजी से फैलने के लिए उपजाऊ जमीन मिल गई है। अग्रवाल (2022) व्हाट्सएप और फेसबुक जैसे प्लेटफॉर्म पर गलत सूचना अभियानों के व्यापक उपयोग के संबंध में कहते हैं, ''जहाँ अक्सर फर्जी खबरों और अफवाहों को हेरफेर की गई तस्वीरों, झूठे दावों और भ्रामक वीडियो के रूप में प्रचारित किया जाता है। इन प्लेटफॉर्म का व्यापक रूप से राजनीतिक प्रचार के लिए उपयोग किया जाता है, जिससे वे विकृत जानकारी फैलाने के लिए प्रभावी, हालाँकि खतरनाक, उपकरण बन जाते हैं। व्हाट्सएप, विशेष रूप से, वायरल फॉरवर्डिंग के लिए उपयोग किया जाता है, जिसमें गलत सूचना जंगल की आग की तरह फैलती है, खासकर ग्रामीण इलाकों में जहाँ डिजिटल साक्षरता कम हो सकती है।''

राजनीतिक दल और अन्य स्वार्थी तत्व इन प्लेटफॉर्म का इस्तेमाल अपने वैचारिक या चुनावी लक्ष्यों से जुड़ी झूठी खबरें फैलाने के लिए करते हैं। उदाहरण के लिए, 2024 के अभियान के दौरान, उम्मीदवारों, पार्टियों और राजनीतिक नेताओं के बारे में कई तरह की अफ़वाहें फैलाई गई, जिनका उद्देश्य प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचाना या जनता की राय को प्रभावित करना था।

2024 के लोकसभा चुनाव अभियान में गलत सूचना का प्रभाव दूरगामी रहा है, जिसने मतदाताओं की धारणा और व्यवहार को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया है। खान (2021) के अनुसार, फर्जी खबरें प्रमुख राजनीतिक मुद्दों के बारे में मतदाताओं की समझ को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जिससे अक्सर ध्रुवीकृत राय बनती है और पहले से मौजूद पूर्वाग्रहों को बल मिलता है। गलत सूचना राजनीतिक नेताओं और पार्टियों के बारे में मतदाताओं की धारणा को बिगाड़ सकती है, जो अंततः चुनावी प्रक्रिया की अखंडता को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, भ्रामक रिपोर्ट या छेड़छाड़ की गई तस्वीरें जो किसी राजनेता को नकारात्मक रूप में दर्शाती हैं, मतदाताओं को उनकी विश्वसनीयता नीतियों और नेतृत्व क्षमताओं के बारे में गलत निर्णय लेने का कारण बन सकती हैं। परिणामतः लोकतांत्रिक चुनाव प्रक्रिया दुशशाओं का शिकार हो जाती है।

तथ्य-जाँच और विनियमन

फर्जी खबरों के प्रसार से निपटने के लिए, ऑल्ट न्यूज़ जैसे तथ्य-जाँच संगठनों ने चुनाव अभियान के दौरान प्रसारित झूठे दावों को खारिज करने में सक्रिय भूमिका निभाई है। ऑल्ट न्यूज़, एक प्रमुख तथ्य-जोच मंच, दावों की पुष्टि करके और विश्वसनीय जानकारी प्रदान करके गलत सूचनाओं का मुकाबला करने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण बन गया है। सिन्हा (2023) के अनुसार, ऑल्ट न्यूज़ और इसी तरह के संगठन झूठे आख्यानों के लिए सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म पर सक्रिय रूप से निगरानी रखते हैं, ऐसी रिपोर्ट प्रकाशित करते हैं जो हेरफेर की गई सामग्री को उजागर करती हैं। उनका काम मतदाताओं को तथ्यात्मक जानकारी प्रदान करके राजनीतिक विमर्श की अखंडता को बहाल करने में मदद करता है, जिससे उन्हें चुनावों के दौरान अधिक सूचित निर्णय लेने की अनुमति मिलती है।

इसके अतिरिक्त तथ्य-जाँच करने वाले संगठन न केवल व्यक्तिगत कहानियों का खंडन करते हैं, बल्कि गलत सूचना के व्यापक रुझानों को भी उजागर करते हैं। फर्जी खबरों के स्रोतों का पता लगाकर और इसके प्रसार के पैटर्न का विश्लेषण करके, ये संगठन गलत सूचना पारिस्थितिकी तंत्र का व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करने में सक्षम हैं। यह 2024 के चुनावों के संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो गया है, जहां बड़े पैमाने पर गलत सूचना अभियान अक्सर युवा मतदाताओं, ग्रामीण मतदाताओं और धार्मिक अल्पसंख्यकों सहित विशिष्ट जनसांख्यिकीय समूहों को लक्षित करते हैं। अपने काम के माध्यम से तथ्य जांचकर्ता यह सुनिश्चित करने में मदद करते हैं कि मतदाता झूठ और असत्य से प्रभावित न हों जो लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को कमजोर कर सकते हैं।

सरकार और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म की प्रतिक्रियाएँ

2024 के चुनाव अभियान के दौरान गलत सूचना को नियंत्रित करने में भारत सरकार और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म दोनों की भूमिका बहस और जाँच का विषय रही है। दत्ता (2022) फर्जी खबरों के प्रसार को रोकने के लिए भारत सरकार द्वारा उठाए गए विभिन्न कदमों पर चर्चा करते हैं, खासकर इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (MEITY) के दिशा-निर्देशों की स्थापना के माध्यम से। इन दिशा-निर्देशों के अनुसार सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म को गलत या भ्रामक समझी जाने वाली सामग्री को हटाना या चिह्नित करना होगा, साथ ही राजनीतिक विज्ञापनों के स्रोतों का खुलासा करना होगा। इसके अतिरिक्त, व्हाट्सएप और फेसबुक जैसे प्लेटफॉर्म ने फर्जी खबरों के वायरल प्रसार को धीमा करने के प्रयास में एक साथ कई उपयोगकर्ताओं को संदेश अग्रेषित करने को सीमित करने के उपाय पेश किए हैं।

कुल मिलाकर, 2024 के लोकसभा चुनाव अभियान में गलत सूचना एक बड़ी चुनौती सिद्ध हुई जिसका चुनावी प्रक्रिया और राजनीतिक विमर्श पर दूरगामी प्रभाव पड़ सकता है। जबकि तथ्य जाँच करने वाले संगठनों और सरकारी हस्तक्षेपों ने फर्जी खबरों के प्रभावों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

ध्रुवीकरण और राजनीतिक लामबंदी के लिए एक उपकरण के रूप में सोशल मीडिया

सोशल मीडिया राजनीतिक विमर्श में ध्रुवीकरण के लिए एक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक बन गया है, खासकर भारत में, जहाँ ट्विटर, फेसबुक और इंस्टाग्राम जैसे डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म चुनावों के दौरान जनमत को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बसु (2023) का तर्क है कि सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर राजनीतिक विमर्श राजनीतिक विभाजन को बढ़ाने में योगदान देता है, क्योंकि उपयोगकर्ता अपनी मौजूदा मान्यताओं के

साथ संरेखित सामग्री के साथ तेज़ी से जुड़ते हैं। यह वातावरण ऐसे स्थान बनाकर ध्रुवीकरण को बढ़ावा देता है जहाँ विरोधी दृष्टिकोणों पर चर्चा करने के बजाय अक्सर उनका अपमान किया जाता है। उदाहरण के लिए, ट्विटर जैसे प्लेटफ़ॉर्म पर राजनीतिक चर्चाएँ अक्सर पक्षपातपूर्ण बहस में बदल जाती हैं, जहाँ जटिल मुद्दों को द्विआधारी शब्दों में अति सरलीकृत कर दिया जाता है, जिससे मतदाताओं के बीच विभाजन और गहरा हो जाता है। ये प्लेटफ़ॉर्म राजनीतिक दलों और उनके समर्थकों को अपने आख्यानों को बढ़ाने में सक्षम बनाते हैं, अक्सर भावनात्मक भाषा का उपयोग करते हुए, जो जनता की समझ को विकृत कर सकता है और सामाजिक ध्रुवीकरण को बढ़ा सकता है।

सोशल मीडिया की प्रकृति उपयोगकर्ताओं को विशिष्ट वैचारिक समूहों को बनाने और उनका अनुसरण करने की अनुमति देती है, जिससे राजनीतिक विभाजन बढ़ सकता है। जैसा कि बसु (2023) ने उल्लेख किया है, जब व्यक्ति केवल ऐसी सामग्री के साथ बातचीत करते हैं जो उनकी मान्यताओं की पुष्टि करती है, तो उनके वैकल्पिक दृष्टिकोणों से जुड़ने की संभावना कम हो जाती है। इस तरह का चयनात्मक प्रदर्शन राजनीतिक और सामाजिक दरारों को गहरा करने में योगदान देता है, खासकर चुनाव चक्रों के दौरान जब भावनाएँ बहुत अधिक होती है।

सोशल मीडिया पर ध्रुवीकरण में योगदान देने वाला एक महत्वपूर्ण कारक इको चैंबर और फ़िल्टर बबल का निर्माण है, जो सोशल मीडिया एल्गोरिदम द्वारा संचालित होते हैं। चंद्रा (2021) के अनुसार, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म को उस सामग्री को प्राथमिकता देने के लिए डिज़ाइन किया गया है जो उपयोगकर्ताओं की पिछली बातचीत के साथ संरेखित होती है, जिससे एक व्यक्तिगत और अक्सर अछूता सूचना पारिस्थितिकी तंत्र बनता है। इन इको चौंबर में, उपयोगकर्ता मुख्य रूप से उन दृष्टिकोणों के संपर्क में आते हैं जो उनकी पहले से मौजूद मान्यताओं को पुष्ट करते हैं, जबकि असहमतिपूर्ण राय को फ़िल्टर किया जाता है। यह घटना राजनीतिक विचारों के कट्टरपंथीकरण को जन्म दे सकती है, क्योंकि व्यक्ति अपने विचारों में अधिक इंढ़ हो जाते हैं और भिन्न दृष्टिकोणों के प्रति कम खुले होते हैं।

इको चैंबर और फ़िल्टर बबल्स राजनीतिक ध्रुवीकरण को और बढ़ाते हैं क्योंकि इससे उपयोगकर्ताओं के लिए विविध या संतुलित दृष्टिकोणों तक पहुँचना मुश्किल हो जाता है। चंद्रा (2021) का सुझाव है कि ये एल्गोरिदम अनजाने में विभाजनकारी बयानबाजी को बढ़ावा देते हैं, खासकर जब पक्षपातपूर्ण सामग्री को समाचार या तथ्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसका परिणाम एक खंडित राजनीतिक परिदृश्य होता है जहाँ व्यक्ति रचनात्मक संवाद में शामिल होने के लिए तेजी से अनिच्छुक होते हैं, जिससे संघर्ष और विभाजन के लिए अनुकूल वातावरण बनता है।

रॉय (2023) आगे बताते हैं कि सोशल मीडिया राजनीतिक आंदोलनों को बड़े भौगोलिक क्षेत्रों में भी तेजी से और कुशलता से संगठित करने में सक्षम बनाता है। डिजिटल अभियान किसी उम्मीदवार के लिए समर्थन जुटा सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप मतदाता मतदान और अधिक सार्वजनिक जुड़ाव में वृद्धि होती है। सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म राजनीतिक अभियानों को वास्तविक समय में मतदाता की भावनाओं को ट्रैक करने की भी अनुमति देते हैं, जिससे राजनीतिक दलों के लिए अपनी रणनीतियाँ और संदेशों को समायोजित करना आसान हो जाता है। राजनीतिक हस्तियों और मतदाताओं के बीच सीधे जुड़ाव का यह स्तर 2024 के लोकसभा चुनाव अभियान के दौरान विशेष रूप से स्पष्ट था जहाँ सोशल मीडिया ने भाजपा और कांग्रेस दोनों के लिए मतदाताओं से जुड़ने, अपने प्लेटफ़ॉर्म को बढ़ावा देने और राजनीतिक भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में काम किया।

केस स्टडीज़ः वास्तविक दुनिया में राजनीतिक लामबंदी

राव (2023) का कथन कि ''मैं भी चौकीदार व डेमोक्रेसी'' जैसे अभियानों की सफलता राजनीतिक आंदोलनों को आकार देने में सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव को दर्शाती है। इन प्लेटफ़ॉर्म के माध्यम से, कार्यकर्ता और राजनीतिक नेता किसी कारण के लिए समर्थन को तेज़ी से बढ़ा सकते हैं और गति पैदा कर सकते हैं, जिसका राजनीतिक परिणामों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। मैं भी चौकीदार व डेमोक्रेसी अभियान ने न केवल राजनीतिक लामबंदी में सोशल मीडिया की शक्ति को उजागर किया बल्कि यह भी दिखाया कि कैसे डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म का उपयोग पारंपरिक राजनीतिक संरचनाओं को चुनौती देने और निर्वाचित अधिकारियों से जवाबदेही की मांग करने के लिए किया जा सकता है।

सोशल मीडिया पर राजनीतिक विमर्श के लिए चुनौतियाँ और अवसर

भारत में सोशल मीडिया पर राजनीतिक चर्चा कई महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना करती है, जिनमें सबसे बड़ी चुनौती फर्जी खबरों और गलत सूचनाओं का प्रसार है। मिश्रा (2024) फर्जी खबरों के लगातार जारी रहने की समस्या पर प्रकाश डालते हैं, खास तौर पर व्हाट्सएप और फेसबुक जैसे प्लेटफॉर्म पर जहाँ आमक जानकारी तेजी से और बिना किसी जवाबदेही के फैल सकती है।

एक और चिंता सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर राजनीतिक विज्ञापन से जुड़े नैतिक मुद्दे हैं। मिश्रा (2024) का तर्क है कि माइक्रो-टारगेटिंग का उपयोग, जहाँ राजनीतिक विज्ञापन आबादी के विशेष वर्गों को आकर्षित करने के लिए डिज़ाइन किए जाते हैं, ध्रुवीकरण को बढ़ा सकते हैं और मतदाताओं के लिए प्रचार से सच्चाई को पहचानना कठिन बना सकते हैं। जैसे-जैसे राजनीतिक विज्ञापन अधिक परिष्कृत होते जाते हैं, कमजोर समूहों का शोषण करने या हानिकारक आख्यान फैलाने का जोखिम बढ़ता जाता है, जिससे राजनीतिक प्रक्रिया में निष्पक्षता और पारदर्शिता के बारे में नैतिक चिंताएँ पैदा होती हैं।

इन चुनौतियों के बावजूद, सोशल मीडिया भारत में राजनीतिक विमर्श को बेहतर बनाने के कई अवसर भी प्रस्तुत करता है। इसका एक प्रमुख लाभ राजनेताओं की वास्तविक समय में मतदाताओं से सीधे जुड़ने की क्षमता है। त्रिपाठी (2024) बताते हैं कि सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म राजनीतिक नेताओं को पारंपरिक मीडिया गेटकीपर को नंरदाज (बायपास) करने और अपने दर्शकों से सीधे संवाद करने की अनुमति देता है। इससे पारदर्शिता बढ़ती है, क्योंकि मतदाता उम्मीदवारों और राजनीतिक दलों से बिना फ़िल्टर की गई जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, जिससे उन्हें सीधे बातचीत के आधार पर अपनी राय बनाने की अनुमति मिलती है। इसके अतिरिक्त, सोशल मीडिया राजनेताओं और मतदाताओं के बीच दो-तरफ़ा संवाद की अनुमति देता है, जहाँ मतदाता सवाल पूछ सकते हैं, चिंताएँ व्यक्त कर सकते हैं और अपने विचार साझा कर सकते हैं। जुड़ाव का यह स्तर न केवल राजनीतिक भागीदारी को बेहतर बनाता है बल्कि राजनीतिक अभियानों को जनता की ज़रूरतों और चिंताओं के प्रति अधिक संवेदनशील बनाता है।

सोशल मीडिया अधिक राजनीतिक समावेशन के अवसर भी प्रदान करता है, विशेष रूप से हाशिए पर पड़े समुदायों के लिए, जिनकी मुख्यधारा के मीडिया तक पहुँच सीमित हो सकती है। सोशल मीडिया के माध्यम से, ये समूह अपनी आवाज़ को बढ़ा सकते हैं, अपने अनुभव साझा कर सकते हैं और राजनीतिक चर्चाओं में शामिल हो सकते हैं। राजनीतिक संचार का यह लोकतंत्रीकरण एक अधिक समावेशी राजनीतिक वातावरण को बढ़ावा देता है, जहाँ विविध दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व और सुनवाई होती है।

गलत सूचना और अनैतिक राजनीतिक विज्ञापन से उत्पन्न चुनौतियों का समाधान करने के लिए, सोशल मीडिया पर राजनीतिक चर्चा की गुणवत्ता में सुधार के लिए कई सुधारों का सुझाव दिया गया है। कपू (2024) राजनीतिक विज्ञापनों पर सख्त नियमों की वकालत करते हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सभी राजनीतिक विज्ञापन पारदर्शी हों और जनता के बीच प्रसारित होने से पहले तथ्यों की जाँच की गई हो। इसके लिए सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म को राजनीतिक सामग्री की निगरानी और विनियमन में अधिक सक्रिय भूमिका निभाने की आवश्यकता होगी, यह सुनिश्चित करते हुए कि विज्ञापन भ्रामक या जोड़-तोड़ वाले न हों। इसके अलावा, कपू (2024) राजनीतिक विज्ञापनों के लिए अनिवार्य प्रकटीकरण के कार्यान्वयन का सुझाव देते हैं, जहाँ पार्टियों को यह बताना होगा कि विज्ञापन को कौन वित्तपोषित कर रहा है और इसके लक्षित दर्शक कौन हैं, ताकि पारदर्शिता बढ़े।

एक और महत्वपूर्ण सुधार स्वतंत्र तथ्य-जाँच संगठनों की स्थापना होगी, जैसे कि भारत में ऑल्ट न्यूज़ जैसे संगठनों द्वारा निभाई गई भूमिका, सोशल मीडिया पर किए गए राजनीतिक दावों की सत्यता को सत्यापित करने के लिए। ये संगठन झूठी सामग्री की पहचान करने और उसे चिह्नित करने के लिए सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म के साथ साझेदारी कर सकते हैं, जिससे गलत सूचना के प्रसार को रोका जा सके। इसके अलावा, फर्जी खबरें फैलाने या राजनीतिक अभियानों में अनैतिक रणनीति का इस्तेमाल करने के लिए सख्त दंड से पार्टियों हेरफेर के उद्देश्यों के लिए सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म का फायदा उठाने से बचेंगी।

अंत में, कपू (2024) का प्रस्ताव है कि सोशल मीडिया पर राजनीतिक चर्चा मतदाताओं के बीच डिजिटल साक्षरता में सुधार लाने के उद्देश्य से शैक्षिक अभियानों से लाभान्वित हो सकती है। गलत सूचना के जोखिमों, आलोचनात्मक सोच के महत्व और राजनीतिक सामग्री को आकार देने में एल्गोरिदम की भूमिका के बारे में जनता को शिक्षित करने से मतदाताओं को अधिक सूचित निर्णय लेने में मदद मिलेगी। इस तरह की मीडिया साक्षरता राजनीतिक चर्चा पर सोशल मीडिया के कुछ नकारात्मक प्रभावों को कम करने और अधिक सजग मतदाताओं को बढ़ावा देने में मदद कर सकती है।

निष्कर्ष

यह अध्ययन भविष्य के शोध के लिए कई क्षेत्रों पर प्रकाश डालता है। एक प्रमुख क्षेत्र राजनीतिक विमर्श को आकार देने में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) की भूमिका है। जैसे-जैसे एआई एल्गोरिदम अधिक परिष्कृत होते जा रहे हैं, यह समझना कि वे मतदाता व्यवहार को कैसे प्रभावित करते हैं और सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म पर किस प्रकार की सामग्री लोकप्रिय होती है, भविष्य के चुनाव की गतिशीलता को समझने के लिए महत्वपूर्ण होगा। इसके अतिरिक्त, क्षेत्रीय चुनावों पर सोशल मीडिया का प्रभाव, जहाँ स्थानीय मुद्दे हावी होते हैं और पार्टी की रणनीतियाँ काफी भिन्न हो सकती हैं, आगे की खोज की मांग करता है। इस बात पर शोध कि सोशल मीडिया द्वारा क्षेत्रीय राजनीतिक विमर्श को कैसे आकार दिया जाता है, भारत में डिजिटल अभियानों के स्थानीयकृत प्रभावों के बारे में मूल्यवान जानकारी प्रदान कर सकता है (वर्मा, 2024)

अंत में, चुनाव के बाद की अवधि में सोशल मीडिया की भूमिका की जांच करना मूल्यवान होगा, खासकर यह कि यह राजनीतिक जवाबदेही और शासन को कैसे प्रभावित करता है। राजनीतिक दृष्टिकोण और व्यवहार पर सोशल मीडिया के स्थायी प्रभाव की आगे की जाँच विशेष रूप से युवा मतदाताओं के बीच भारत में प्रौद्योगिकी और लोकतंत्र के बीच विकसित होते संबंधों के बारे में जानकारी प्रदान कर सकती है।

संदर्भ सूची

इंटरनेट और मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया (IAMAI)। (2023)। ''इंडिया इंटरनेट रिपोर्ट।''

मेहता, पी. (2020), डिजिटल डेमोक्रेसीः भारतीय चुनावों में सोशल मीडिया की भूमिका। नई दिल्लीः सेज पब्लिकेशंस।

स्मिथ, ए. (2022), सोशल मीडिया की राजनीतिः डिजिटल युग में प्रभाव और शक्ति। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

गुप्ता, आर. (2023)। डिजिटल बदलावः सोशल मीडिया और भारतीय राजनीति। नई दिल्लीः प्रकाशन प्रकाशक। जैन, एस. (2021), डिजिटल युग में प्रचारः भारतीय चुनावों में भाजपा और कांग्रेस का अध्ययन। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

कौर, ए. (2022), भारतीय चुनावों में सोशल मीडिया की भागीदारीः रणनीतियों और प्रभाव। सेज पब्लिकेशन्स। पटेल, एस. (2023), भारतीय चुनावों में राजनीतिक आख्यानः राष्ट्रवाद, अर्थव्यवस्था और सामाजिक न्याय। नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

सिंह, आर. (2023), डिजिटल राजनीतिः प्रभावशाली व्यक्ति, स्वयंसेवक और भारतीय चुनावों में सोशल मीडिया की भूमिका। नई दिल्लीः सेज पब्लिकेशन्स।

शर्मा, पी. (2023), मीम्स और वीडियो की ताकतः भारतीय राजनीतिक अभियानों में दृश्य सामग्री। नई दिल्लीः प्रकाशन पब्लिशर्स।

वर्मा, ए. (2024), सोशल मीडिया पर युवाओं की भागीदारीः भारतीय चुनावों में इंस्टाग्राम और स्नैपचौट की भूमिका। नई दिल्लीः रुटलेज।

खान, एम. (2021). भारत के चुनाव अभियानों में मतदाता व्यवहार पर गलत सूचना का प्रभाव। इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, 82(4), 112-128

सिन्हा, ए. (2023), फेक न्यूज़ के युग में तथ्य जाँचः भारतीय राजनीति में ऑल्ट न्यूज़ की भूमिका। पत्रकारिता अध्ययन, 21(2), 59-74

दत्ता, एस. (2022). भारत में गलत सूचना पर सरकार और सोशल मीडिया की प्रतिक्रियाएँरू एक नियामक परिप्रेक्ष्य। भारतीय राजनीतिक समीक्षा, 34(1), 86-102

चंद्रा, आर. (2021), इको चौंबर्स और फ़िल्टर बबल्सः सोशल मीडिया पर राजनीतिक ध्रुवीकरण में एल्गोरिदम की भूमिका। जर्नल ऑफ़ डिजिटल पॉलिटिक्स, 34(4), 56-70

रॉय, एस. (2023), सोशल मीडिया और राजनीतिक लामबंदीः 2024 के भारतीय चुनावों में मतदाताओं को शामिल करना। भारतीय राजनीतिक समीक्षा, 27(3), 45-60

राव, एम. (2023), मैं भी चौकीदार व डेमोक्रेसीः सोशल मीडिया अभियान और भारत में राजनीतिक लामबंदी में उनकी भूमिका। साउथ एशियन जर्नल ऑफ पॉलिटिक्स, 15(2), 77-89

मिश्रा, ए. (2024), भारतीय चुनावों में फर्जी खबरें और राजनीतिक विज्ञापनः एक आलोचनात्मक समीक्षा। जर्नल ऑफ डिजिटल पॉलिटिक्स, 43(2), 65-80

त्रिपाठी, पी. (2024)। जुड़ाव और पारदर्शिताः राजनीतिक संचार में सोशल मीडिया की भूमिका। इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, 32(1), 22-35

कपू एस. (2024), सोशल मीडिया पर राजनीतिक विज्ञापन को विनियमित करनाः पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करना। राजनीतिक सुधार समीक्षा, 28(4), 98-112

पत्रकारिता की पाठशाला में भारतेंदु मण्डल का प्रशिक्षण

डॉ. अभिषेक कुमार मिश्र

सारांश

पत्रकारिता भारतेन्दु काल की सबसे लोकप्रिय विधा थी। उस काल के सभी लेखक प्रायः पत्रकार भी थे। पत्रकारिता उनका मिशन था, जिसमें देश और समाज तथा साहित्य की सेवा का बहुत बड़ा विजन निहित था। पत्रकारिता ही वह माध्यम थी, जिसके द्वारा उस युग के लेखक साहित्य की सेवा से लेकर राष्ट्र की सेवा में तत्पर थे। वे पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही लोकहितसाधन, हिन्दी की सेवा तथा हिन्दी गद्य का सर्वतोमुखी विकास करने हेतु समर्पित थे। भारतेन्दु मंडली के लेखक संवेदनात्मक स्तर पर परस्पर बहुत ही ही करीब थे। इसका एक बहुत बड़ा कारण यह था कि ये लेखक किसी न किसी पत्रिका के सम्पादन से या तो सीधे जुड़े हुए थे या इन पत्रों में इनके लेख नियमित रूप से प्रकाशित हुआ करते थे। वस्तुतः इस युग के लेखकों का वास्तविक प्रशिक्षण पत्रकारिता की पाठशाला में ही हुआ। इन्होंने किसी कॉलेज अथवा विश्वविद्यालय से कोई उपाधि नहीं प्राप्त की थी। उनका शिक्षण तथा प्रशिक्षण दोनों ही पत्रकारिता के धरातल पर हुआ। ये सभी लेखक बहुत ही निर्भीक, ईमानदार तथा कर्तव्यनिष्ठ पत्रकार थे, जिस कारण बिना किसी लोभ और लिप्सा के समाज और जीवन के पथ को आलोकित करते हुए उसके आगे-आगे मशाल दिखते हुए एक सच्चाई की तरह चल रहे थे। पत्रकारिता का यह सच्चा धर्म है, जिसका बहुत ही ईमानदारी के साथ निर्वहन भारतेन्दु युग के लेखक कर रहे थे। इस शोध-पत्र का उद्देश्य भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक क्षेत्र में जागरण तथा राष्ट्रीय भावना के उन्नयन में उसकी महती भूमिका का उद्घाटन तथा विश्लेषण करना है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल को 'गद्य काल' की सँज्ञा दी है। इस संदर्भ में उन्होंने लोकहितसाधन, हिन्दी की सेवा एवं हिन्दी गद्य की सर्वतोमुखी गति के लिए उस काल में निकलने वाली पत्र-पत्रकाओं की महती भूमिका को स्वीकार करते हुए कहा है कि ''हिन्दी गद्य की सर्वतोमुखी गति का अनुमान इसी से हो सकता है कि पचीसों पत्र-पत्रिकाएँ हरिश्चंद्र जी के जीवन काल मे निकलीं..। इनमें से अधिकांश पत्र पत्रिकाएँ तो थोड़े ही दिन चलकर बंद हो गई पर कुछ ने लगातार बहुत दिनों तक लोकहितसाधन और हिन्दी की सेवा की है जैसे- बिहार बंधु, भारत मित्र, भारत जीवन, उचित वक्ता, दैनिक हिंदोस्थान, आर्यदर्पण, ब्राह्मण, हिन्दी प्रदीप। 'मित्रविलास' सनातन धर्म का समर्थक पत्र था जिसमें पंजाब में हिन्दी प्रचार का बहुत कार्य किया था ब्राह्मण, हिन्दी प्रदीप और आनंद कादंबिनी साहित्यिक पत्र थे ''[1] जिनमें बहुत सुंदर मौलिक गद्य प्रबंध और कविताएँ निकल करतीं थीं। शुक्ल जी की उपर्युक्त टिप्पणी से जो बात ध्वनित होती है उसमें पहला यह है कि भारतेन्दु काल के अधिकांश साहित्यकार पत्रकारिता से जुड़े हुए थे साथ ही उन्होंने 'लोकहितसाधन', 'हिन्दी की सेवा' तथा 'हिन्दी गद्य का सर्वतोमुखी विकास' की बात कही है। लोकहितसाधन का तात्पर्य उस साधन से है, जो जनता की भलाई अथवा जन कल्याण हेतु

समर्पित है। लोकहित व्यक्ति या समूह के संकीर्ण हितों के विपरीत व्यापक समुदाय के हितों तथा जरूरतों का प्रतिनिधित्व करता है। जन कल्याण के भीतर सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा, पर्यावरण, सामाजिक न्याय और मूलभूत ढाँचे का विकास शामिल है।

भारतेन्दु मण्डल की पत्रकारिता सामाजिक न्याय, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, पर्यावरण तथा समस्त सामाजिक संरचना में परिवर्तन की हिमायती थी इसी धरातल से उस युग की पत्रकारिता लोक का हित साथ रही थी। यही उनकी निगाह में लोकहित था, जिसके भीतर सम्पूर्ण समाज की भलाई शामिल थी। 'हिन्दी की सेवा' भारतेन्दु काल के लेखकों के लिए समाज एवं राष्ट्र की सेवा थी। उनकी निगाह में मातृभाषा में उन्नति ही समस्त उन्नतियों का आधार है। भारतेन्दु का नारा ही 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति कौ मूल अर्थात् बिना निज भाषा की उन्नति के कोई भी विकास संभव नहीं था।

भारतेन्दु के समय में हिन्दी भाषा का स्वरूप स्थिर नहीं था। ब्रजभाषा से पूरी तरह से मुक्ति नहीं मिली थी और खड़ी बोली पूरी तरह से साहित्य की भाषा के पद पर प्रतिष्ठित नहीं हो पायी थी। कविता अभी भी ब्रजभाषा में रची जा रही थी। भारतेन्दु स्वयं कविता ब्रजभाषा में करते थे तो गद्य खड़ी बोली में। वे एक तरफ ब्रजभाषा को पकड़े हुए थे तो दूसरी तरफ खड़ी बोली को भी उतने ही आदर के साथ अपनाते हैं। भारतेन्दु के बाद तो खड़ी बोली ही हिन्दी क्षेत्र और हिन्दी साहित्य की व्यापक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होती है। भारतेन्दु के द्वारा खड़ी बोली में साहित्य लेखन कार्य की शुरुआत अपने समय का बहुत बड़ा कार्य था। परवर्ती हिन्दी जगत भारतेन्दु के इस अवदान का सदा ऋणी रहेगा। भारतेन्दु ने केवल भाषा को ही नहीं बदला बल्कि साहित्य को बहुत सारे नवीन विषयों से भी जोड़ा। उनका व्यक्तित्व बहुत ही सर्जक था। अपने समय के वे प्रतिनिधि साहित्यकार थे, जिस कारण उन्होंने लेखकों की एक ऐसी मंडली तैयार की, जो उन्हीं के आदर्शों पर चलती थी। भारतेन्दु मंडली के लेखक संवेदनात्मक स्तर पर परस्पर बहुत ही करीब थे। इसका एक बहुत बड़ा कारण यह था कि ये लेखक किसी न किसी पत्रिका के सम्पादन से या तो सीधे जुड़े हुए थे या इन पत्रों में इनके लेख नियमित रूप से प्रकाशित हुआ करते थे। उस युग में साहित्य तथा पत्रकारिता का यह अद्‌भुत संयोग था। साथ ही ये लेखक भारतेन्दु के प्रति अपार श्रद्धा और आदर के भाव से भरे हुए थे। इसका एक कारण भारतेन्दु का नेतृत्वकारी आत्मीय भाव था, जिसको इंगित करते हुए प्रसिद्ध विद्वान रामस्वरूप चतुर्वेदी का विचार है कि-'' भारतेंदुयुगीन लेखक संवेदनात्मक स्तर पर परस्पर बहुत निकट रहे हैं। एक कारण तो शायद यह था कि लेखकीय मण्डल का यह जीवन जो साहित्यिक पत्रकारिता से जुड़ा था, अपने नए-नए उत्साह में समान आदर्शों से प्रेरित था। फिर भारतेन्दु का संरक्षण और आत्मीय भाव का मिला-जुला रूप उन्हें सहज भाव से नेतृत्व के रूप में स्वीकार्य था।''[2]

भारतेन्दु मण्डल के प्रमुख लेखकों में मिर्जापुर से बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', इलाहाबाद से बालकृष्ण भट्‌ट, काशी से दामोदर शास्त्री सप्रे, राव कृष्ण देव शरण सिंह 'गोप', मोहनलाल विष्णु पंड्या, कार्तिक प्रसाद खत्री, ठाकुर जगमोहन सिंह, अंबिकदत्त व्यास, रामकृष्ण वर्मा, सुधाकर द्विवेदी, राधाकृष्ण दास, इलाहाबाद से काशीनाथ खत्री, लाला सीताराम, वृंदावन से गोस्वामी राधाचरण, कानपुर से प्रताप नारायण मिश्र, पटना से केशवराम भट्‌ट तथा दिल्ली से लाला श्रीनिवासदास आदि प्रमुख थे। इन सभी लेखकों के केंद्र में भारतेन्दु थे और काशी इनकी रचना धर्मिता की केंद्रभूमि थी। दिल्ली और वृंदावन जैसे सुदूर स्थानों के लेखक भी इनसे बहुत ही घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे। यद्यपि इन लेखकों की वैयक्तिक रचनात्मकता का क्षेत्र पृथक था किन्तु एक वृत्त के रूप में इनका योगदान अद्‌भुत है। जिन पत्रिकाओं ने इन साहित्यकारों को परस्पर एक-दूसरे से जोड़ रखा था उनमें भारतेन्दु की 'कवि-वचन-सुधा' तथा 'हरिश्चंद्र चंद्रिका', बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' की 'आनंद कादंबिनी', बालकृष्ण भट्‌ट की 'हिन्दी प्रदीप', प्रतापपनारायण मिश्र की 'ब्राह्मण', लाला श्रीनिवासदास की 'सदादर्श', केशवराम भट्‌ट की 'बिहार बंधु', गोस्वामी राधारचरण की 'भारतेन्दु' आदि प्रमुख थीं। ये सभी साहित्यकार भी थे और पत्रकार भी। साहित्य और पत्रकारिता का यह विलक्षण संयोग

था, जो उस युग की पुनर्जागरण युगीन चेतना के अनुरूप भी था, जिसको लक्ष्य करते हुए डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी कहतें हैं- ''साहित्य और पत्रकारिता का यह विलक्षण समागम पुनर्जागरण युग की चेतना के अनुरूप था।''[3] भारतेन्दु इसी पुनर्जागरण युगीन चेतना के अगुआ थे। उनकी रचनाशीलता ने समाज के भीतर एक नव जागरण को जन्म दिया, जिसकी सबसे बड़ी ताकत उस मंडली की साहित्यिक पत्रकारिता में निहित थी। पत्र-पत्रिकाएँ सामाजिक तथा धार्मिक विचारों को प्रकट करने का सशक्त माध्यम थीं उस दौर में। उस काल के साहित्यकारों की प्रतिभा अनेक रूपों मे प्रकट हुई किन्तु लेखकीय प्रतिभा की सबसे विशिष्ट अभिव्यक्ति पत्र-पत्रिकाओं में ही हुई। इस विषय में रामविलास शर्मा का विचार है कि- ''युग की प्रतिभा जनता के निकट अनेक रूपों में प्रकट हुई है। नाटक, सभा, संस्थाओं में भाषणों, पत्र-पत्रिकाओं के लेखों आदि के द्वारा लेखक जनता तक अपना संदेश पहुँचा सके। इन सबमें पत्र-पत्रिकाएँ ही अधिक स्थायी और दूर-दूर तक पहुँचने वाला साधन थीं। हिन्दी में पत्र-पत्रिकाओं की कोई जीवित परंपरा नहीं थी, परंतु एकाएक उत्तर भारत में आने वाले कितने नगरों में पत्रों की एक बाढ़-सी आ गयी। इसमें बहुत से कुछ महीने या कुछ वर्ष चलकर ठप्प हो गए। कुछ दीर्घकाल तक हिन्दी की सेवा करते रहे। लाहौर, बंबई और कलकत्ता को यदि सीधी सेवाओं से मिला दिया जाए तो एक त्रिकोण बनेगा, उसके भीतर देश का वह भाग आ जाएगा जहाँ से इस प्रकार के पत्र निकलते थे। बंबई की अपेक्षा कलकता से बड़ी संख्या में और बहुत अच्छे पत्र निकले। बनारस तो पत्रिकाओं का केंद्र था। इनमें अधिकांश पत्रों के प्रेरक काशी में स्वयं भारतेन्दु थे।''[4]

भारतेन्दु काल में निकलने वाली पत्रिकाओं को कई बार आर्थिक संकटों का सामाना करना पड़ा। यद्यपि इन लेखकों ने पत्रिकाओं को चलाने के लिए अपना सब कुछ दांव पर लगा दिया किन्तु फिर भी पत्रिका को नियमित रूप से चलाने हेतु जिस आर्थिक सहयोग की जरूरत थी वह उस युग में इन लेखकों को प्राप्त नहीं थी, जिस कारण अनेक बार कई पत्रिकाओं को बीच मे ही बंद करना पड़ा। यहाँ तक कि बालकृष्ण भट्ट के सम्पादन में निकलने वाली 'हिन्दी प्रदीप' को भी कई बार बंद होना पड़ा। 'ब्राह्मण' पत्रिका के संपादक पण्डित प्रताप नारायण मिश्र जब पत्रिका के ग्राहकों से चंदा माँगते-माँगते थक जाते थे तब पत्र में इस प्रकार की याचना भी लिखते थे 'आठ माँस बीते जजमान! अब तौ करौ दच्छिना दान।' बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री ने हिन्दी 'संवाद पत्रों' की दिशा मे बहुत ही उत्साह दिखाया था। उनके सम्पादन में 'हिन्दी दीप्ति प्रकाश' नामक एक संवाद पत्र तथा 'प्रेमविलासिनी' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ था। लेकिन उस युग की समस्या यह थी कि लोगों की रुचि संवाद पत्रों को पढ़ने में थी ही नहीं। खत्री जी ने पाठकों में रुचि पैदा करने के उद्देश्य से उनके घर जाकर पत्र को सुनाने का कार्य भी किया। उन्होंने इसके लिए अथक प्रयास भी किया कि पाठकों की रुचि इस दिशा में बढ़े किन्तु इन सबके बावजूद उनका यह पत्र कुछ ही दिन चलकर बंद हो गया था। आगे चलकर कलकत्ता से 'भारत मित्र' नामक एक संवाद पत्र बहुत ही धूमधाम से निकला। हिन्दी संवाद पत्रों की श्रृंखला में इस पत्र ने बहुत ही गौरवपूर्ण स्थान हासिल किया था। शुक्लजी ने इस पत्रिका के विषय मे अपने इतिहास ग्रंथ में लिखा है कि भारतेन्दु जी कभी-कभी इसमें लेख दिया करते थे। भारतेन्दु का असर उस काल के साहित्यकारों पर इस कदर था कि कुछ लेखकों ने तो भारतेन्दु की लेखन शैली और भाषा पर मुग्ध होकर स्वतंत्र पत्रिका का प्रकाशन भी किया था।

भारतेन्दु के संपादकत्व में 'कविवचन सुधा' (15 अगस्त 1867), हरिश्चंद्र मैगजीन (1873) जिसका नाम बाद में हरिश्चंद्र चंद्रिका हो गया तथा 'बालबोधिनी' (1874) नामक तीन पत्रिकाएँ निकलीं। पत्रकारिता जगत में 'कविवचन सुधा' का प्रकाशन एक क्रांतिकारी घटना है। इस पत्रिका ने हिन्दी साहित्य और हिन्दी पत्रकारिता को एक नूतन आयाम प्रदान किया था। डॉ रामविलास शर्मा ने तो यहाँ तक कहा है कि कविवचन सुधा का प्रकाशन करके भारतेन्दु ने एक नए युग का सूत्रपात किया था। भारतेन्दु एक आदर्शवादी साहित्यकार थे। पत्रिका के प्रवेशांक में अपने साहित्यिक उच्चादर्श की घोषणा करते हुए वे लिखते हैं- इस प्रकार की थी-

खल जनन सों सज्जन दुखी मति होंहि हरिपद मति रहै।
अपधर्म छूटै स्वत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै।।
बुध तजहि मत्सर, नारि नर सम होंहि, जग आनंद लहै।
तजि ग्राम कविता, सुकविजन की अमृतवानी सब कहै।।[5]

कविवचन सुधा में साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक, यात्रा-विषयक, ज्ञान-विज्ञान तथा नीति विषयक लेख प्रकाशित हुआ करते थे। इस वजह से इस पत्रिका की लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि यह बहुत ही कम समय में मासिक से पाक्षिक एवं पाक्षिक से साप्ताहिक हो गयी। भारतेन्दु इस पत्रिका में अंग्रेजी राज पर भी बहुत ही खरी-खरी टीका-टिप्पणी किया करते थे। कविवचन सुधा 31.8.74 'सच मत बोल' शीर्षक में वे लिखते हैं- ''अखबार वाले इतना भूकतें हैं, कोई नहीं सुनता अंधेर नगरी है। व्यर्थ न्याय और आजादी देने का दावा है। सब स्वार्थ साधते-साधते हौ कहोगे गवर्नमेंट के लोग तुमसे भला न मानेंगे सारांश यह कि सच्ची बांतें जिनसे कहोगे व तुम्हें शत्रु मानेंगे।''[6] भारतेन्दु अंग्रेज और अंग्रेजी राज को भारत की सम्पूर्ण दुर्दशा का मूल मानते हैं- ''अब तो प्रति वर्ष में कहीं न कहीं दुष्काल पड़ा ही रहता है। मुख्य करके अंगरेजी राज में इसका घर है और बहुधा ऐसा सुनने में आया है कि विसूचिका का रोग जो अब सम्पूर्ण भारत खंड में छा रहा है अंगरेजों के राज में इसका प्रारंभ हुआ है।.. जब अंगरेज विलायत से आतें हैं प्रायः कैसे दरिद्र होते हैं और जब हिंदुस्तान से अपने विलायत को जाते हैं कुबेर बनकर जाते हैं.... इससे सिद्ध हुआ कि रोग और दुष्काल इन दोनों के मुख्य कारण अंगरेज ही हैं।''[7] भारतेन्दु मुस्लिम शासन को अंग्रेजों की तुलना में सौ गुना अपव्ययी मानते हुए भी उन्हें ज्यादा ठीक मानतें है। उनका मानना है- ''मुसलमान लोग अंग्रेजों की अपेक्षा सौगुना अपव्ययी थे, परंतु वे लोग इस देश के निवासी थे इससे उनका अर्थ समुदाय इसी देश मे व्यय होता था।.. जिस प्रकार अमेरिका उपनिवेशित होकर स्वाधीन हुई वैसे ही भारतवर्ष में भी स्वाधीनता लाभ कर सकता है परंतु भारतवर्ष उपनिवेशित होने से इसके विपक्ष में भी बहुत आपत्ति है। बीस करोड़ भारतवर्ष को पचास हजार अंग्रेज़ शासन करतें हैं। ये लोग प्रायः शिक्षित और सभ्य हैं परंतु इन्हीं लोगों के अत्याचार से सब भारतवर्षीगण दुखी रहे हैं।''[8] भारतेन्दु की इन टिप्पणियों से अंगरेज अधिकारी चिढ़ते थे। इसी कारण काशी के मजिस्ट्रेट ने 'कविवचन सुधा' के अंकों को शिक्षा विभाग के लिए बंद कर दिया। सात वर्षों तक 'कविवचन सुधा' का सम्पादन-प्रकाशन करने के उपरांत भारतेन्दु ने 15 अक्टूबर 1873 को बनारस से 'हरिश्चंद्र मैगजीन' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। इस पत्रिका के प्रधान पृष्ठ पर यह उल्लिखित रहता था कि यह पत्रिका 'कविवचन सुधा' से सम्बद्ध है। 'हरिश्चंद्र मैगजीन' के पहले ही अंक में भारतेन्दु लिखते हैं, ''अंग्रेजों को घूस, सलाम बढ़ेगी ऐड्रेसी से कुछ मिलता है? धन विद्या कौशल सब उनके पास है। उन्हीं के आवागमन के लिए सभाएँ होतीं हैं। एका और बल उनके पास है। हिंदुस्तानियों के हिस्से में मूर्खता है, कायरता धक्के खाना पड़ा है। जो भाग्यशाली हैं वे दरबार में कुर्सी पाते हैं कौंसिल मेंबरी और सितारे हिन्द का खिताब पाते हैं।''[9]

'कविवचन सुधा' पत्रिका का महत्त्व इस बात मे भी है कि पहली बार इस पत्रिका के माध्यम से विदेशी वस्तुओं के सीधे-सीधे बहिष्कार की बात कही गयी। आगे चलकर स्वाधीनता आंदोलन की लड़ाई में महात्मा गांधी भी स्वदेशी वस्तुओं के इस्तेमाल और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की बात करते हैं। वास्तव मे स्वदेशी आंदोलन के वास्तविक सूत्रधार भारतेन्दु ही थे। भरतभूमि पर पसारती हुई अंग्रेजी सत्ता पर भारतेन्दु ने प्रथम बार स्वदेशी के नारे और संकल्प के सहारे करारा प्रहार किया था। 'कविवचन सुधा' में उन्होंने लिखा है- ''हमलोग सर्वांतयोगी, सब स्थल में वर्तमान स्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानतें हैं और लिखतें हैं, कि 'हम लोग आज के दिन से कोई भी विलायती कपड़ा नहिं पहिनेंगे और जो कपड़ा की पहिले से मोल ले चुके हैं और आज की मिति तक हमारे पास है उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल नहिं लेंगे और किसी भांति का भी विलायती कपड़ा नहीं पहिनेंगे, हिंदुस्तान का ही बना कपड़ा पहिनेंगे।''[10] इस पत्रिका के माध्यम से भारतेन्दु ने जिस सामाजिक

सुधार (अंधविश्वास, छूआछूत, भेदभाव आदि), राजनीतिक सुधार तथा साहित्यिक सुधार की वकालत की, वही उस समय की पत्रकारिता की प्रमुख आवाज बन गयी। भारतेन्दु ने स्त्री शिक्षा विषयक एक पत्रिका 'बालबोधिनी' का सम्पादन किया। यद्यपि यह पत्रिका महज तीन वर्ष चलकर (1874 से 1877 तक) बंद भी हो गई किन्तु स्त्रियों में चेतना और विवेक पैदा करने के विशिष्ट उद्देश्य से संबंधित होने के कारण इस पत्रिका का साहित्य के इतिहास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें स्त्रियों की शिक्षा को अपरिहार्य माना गया है। इसका कारण यह है कि अशिक्षा के कारण स्त्री जाति सबसे अधिक धार्मिक अंधविश्वास तथा ठगी की शिकार होती है। इसके तमाम उदाहरण आज के समय में भी देखे जा सकतें हैं। आज भी बाबाओं के जाल में सबसे अधिक स्त्रियाँ ही आती हैं। पत्रिका में प्रकाशित एक कहानी का यह अंश लेखक के दृष्टिकोण को बताने के लिए पर्याप्त है- ''जबसे अंग्रेज बहादुर का राज्य हुआ है और पुरुष लोग किमिसरौ इत्यादि विद्या पढ़ने लगें हैं तबसे वे प्रायः बहुत विद्या वालों से नहीं ठगे जाते पर स्त्रियों से अबतक यह मूर्खता नहीं गयी है इसी से उनको प्रायः धूर्त लोग जो अपने को शुद्ध तांत्रिक रसायनी और दरसनियाँ भूत विद्या वाले बतलातें हैं, बहुत ठगा करतें हैं और खियाँ उनके जाल में आकर सैकड़ों वरन हजारों रुपया खराब करतीं हैं।'' इसीलिए भारतेन्दु स्त्री शिक्षा को अत्यंत जरूरी मानतें थे। शिक्षा ही वह प्रकाश है, जिससे स्त्री समाज के भीतर विवेक दृष्टि पैदा करके उन्हें अनेक प्रकार की यातनाओं और शोषण से बचाया जा सकता है। यही नहीं, पत्रकारिता के क्षेत्र में भारतेन्दु ने कुछ नवीन विधाओं को भी जन्म दिया। इस क्रम में उन्होंने बाल जीवन पर आधारित पत्रकारिता की भी शुरुआत की। सन् 1882 में भारतेन्दु ने 'बाल दर्पण' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। यद्यपि यह पत्रिका मासिक रही किन्तु इसका जो सबसे बड़ा लाभ उस समय के पत्रकारों को प्राप्त हुआ वह यह कि उनका ध्यान बाल उपयोगी साहित्य के सृजन की तरफ गया। उस दौर में बच्चों की सृजनात्मक चेतना के विकास हेतु अनेक पौराणिक, काल्पनिक तथा ऐतिहासिक कथाओं को बहुत ही रोचक तरीके से प्रकाशित करने की परंपरा का सूत्रपात हुआ।

भारतेन्दु मण्डल में सबसे लंबी आयु बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन को मिली थी। भारतेन्दु मंडली के संस्कारों को बीसवीं शती में दूर तक विस्तार देने वाले साहित्यकार थे प्रेमघन। ये भारतेन्दु के बहुत ही करीबी थे। प्रेमघन ने दो पत्रों का सम्पादन किया। पहला 'आनंद कादंबिनी' और दूसरा 'नागरी नीरद।' प्रेमघन की प्रायः सभी रचनाएँ सर्वप्रथम इन पत्रिकाओं मे प्रकाशित हुई। एक प्रकार से यह पत्रिका उन्होंने अपने ही विचारों तथा भावों को अंकित करने के लिए निकाली थी। दूसरे लेखकों और विचारकों के लेख इसमें नहीं के बराबर थे। इस पर एक बार भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र ने उनसे कहा था- ''जनाब! यह किताब नहीं कि जो आप अकेले ही हर काम फरमाया करते हैं बल्कि अखबार है कि जिसमें अनेक जनलिखित लेख होना आवश्यक है और यह भी जरूरत नहीं कि सब एक तरह के लिक्खाड़ हों।''

बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु काल के एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण साहित्यकार थे। इन्होंने हिन्दी गद्य में ललित निबंधों की जिस परंपरा को जन्म दिया वही आगे चलकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से होती हुई पंडित विद्यानिवास मिश्र तक पहुँचती है। बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप' नामक पत्रिका का सम्पादन किया। ये भारतेंदुकाल के सबसे प्रखर तथा तेजस्वी पत्रकार थे। उनके द्वारा संपादित 'हिन्दी प्रदीप' में अत्यंत निर्भीक लेख तथा साहसिक टिप्पणियाँ प्रकाशित हुआ करतीं थीं। अपनी साहसिकता में 'हिन्दी प्रदीप' भारतेन्दु की 'कविवचन सुधा' एवं 'हरिश्चंद्र मैगजीन' की सशक्त श्रृंखला की महत्वपूर्ण कड़ी है, जो 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' से आरंभ होकर महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'सरस्वती' तक चलती है।

बालकृष्ण भट्ट के परम सहयोगी तथा उनके समकक्ष एवं समानांतर लेखक के रूप में 'प्रताप नारायण मिश्र' का नाम सबसे पहले आता है। ये 'ब्राह्मण' पत्रिका के संपादक थे, जो भारतेन्दु युग की बहुचर्चित पत्रिका थी। इस पत्रिका के संपादक के रूप में उन्होंने विविध प्रासंगिक विषयों पर निबंध तथा टिप्पणियाँ लिखीं, जिनमें बहुत ही विनोदपूर्ण रूप में सामाजिक विवेचन किया गया है। जैसे-हो ओ ओ ली है!, बेगार,

रिशवत, कचहरी में शालिग्रामजी, कान्य कुब्जों की ही सबसे हीन दशा क्यों है, वर्षारंभ, घूरे के लता बीने कनातन का डौल बाँधे, कानपुर और नाटक, कन्नौज में तीन दिन, पँच परमेश्वर, समझदार की मौत है, बात, मनोयोग, वृद्ध, भौ आदि। इनमें विनोद भी है और समाज की स्थिति का बहुत ही प्रभावपूर्ण वर्णन भी। 'समझदार की मौत है' नामक निबंध से एक उदाहरण इसका साक्ष्य है, ''सब ते भले हैं मूढ़ जिन्हें न व्यापै जगत गति'। मजे से पाराई जमा गपक बैठना, खुशामदियों से गप मारा करना, जो कोई तिथ-त्योहार आ पड़ा तो गंगा में बदन धो आना, गंगापुत्र को चार पैसे देकर सेंतमेत में धरममूरत, धरम औतार का खिताब पाना; संसार परमार्थ दोनों तो बन गए, अब काहे की है है और काहे की खै खै?.. जब स्वदेशी भाषा का पूर्ण प्रचार था तब के विद्वान कहते गीर्वाणवाणीषु विशाल बुदधिस्तथान्य भाषा-रसोलोलुपोहम। अब आज अन्य भाषा वरंच अन्य भाषाओं का करकट (उर्दू) छाती का पीपल हो रही है, अब यह चिंता खाए लेती है कि कैसे इस चुड़ैल से पिछा छूटे।''[12] यहाँ पर एक तरफ लेखक ने सामाजिक स्थिति की विद्रूपता पर गहरा व्यंग्य किया है तो दूसरी तरफ भाषा पर भी गंभीर चिंता प्रकट की है।

सारतः कहा जा सकता है कि भारतेन्दु काल की साहित्यिक पत्रकारिता ने एक ओर सामाजिक तथा राष्ट्रीय जागृति का काम किया तो दूसरी ओर हिन्दी भाषा के मानकीकरण एवं साहित्य के क्षितिज का भी विस्तार किया। भारतेन्दु के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रभावित तथा प्रेरित होकर उस युग में पत्रकारों, साहित्यकारों व रचनाकारों की ऐसी मंडली तैयार हुई, जिनका एक ही उद्देश्य था- हिन्दी की जुबान और भारत का कल्याण।

संदर्भ ग्रंथ

1. शुक्ल रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 34वाँ संस्करण, पृ. सं. 249-50
2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलहाबाद, पृ. सं. 103.
3. वहीं पृ.सं. 104
4. ishwahindijan-blogpost-com से भारतेन्दु की हिन्दी पत्रकारिता।
5. hi-m-wikipedia-org से प्राप्त।
6. विकिस्रोत-इमेज, कविवचन सुधा।
7. विकिस्रोत-इमेज, कविवचन सुधा।
8. विकिस्रोत-इमेज, कविवचन सुधा।
9. विकिस्रोत-इमेज, कविवचन सुधा।
10. vishwahindijan-blogspot-com पर उपलब्ध ''भारतेन्दु की हिन्दी पत्रकारिता में सामाजिक एवं राष्ट्रवादी विमर्श-संकर्षण'' 'लेख से साभार।
11. Streekaal-com पर उपलब्ध 'भारतेन्दु की स्त्री चेतन का स्वरूप, संदर्भः बालबोधिनी पत्रिका', अरुण कुमार प्रियम के लेख से साभार प्राप्त।
12. शुक्ल रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या-254, संशोधित एवं परिवर्धित चौतीसँवा संस्करण।

भारतीय सामाजिक संस्कृति एवं वेब सीरीज विसंगतियाँ

कुलदीप कुमार, डॉ. रचना गंगवार

शोध सारांश

मनोरंजन के बदलते स्वरूप में इसे प्रस्तुत करने के आयामों में भी निरंतर बदलाव देखने को मिल के अनुप्रयोग व्यापक एव रहे हैं। कृत्रिम बुद्धिमता के अनुप्रयोग ने इंटरनेट की उपयोगिता को और अधिक व्यापक एवं सक्षम बना दिया है। जिसका उपयोग मनोरंजन के क्षेत्र में भी देखने को मिल रहा है। मनोरंजन के नवीन साधन ओटीटी पर दिखाई जाने वाली वेब सीरीज आम जन मानस की बौद्धिक अभिवृत्ति को प्रभावित कर रहे हैं। ओटीटी पर उपलब्ध फ़िल्में, सिनेमा नियमों का उल्लंघन कर दर्शकों की मानसिक व व्यावहारिक धारणाओं को नियंत्रिण करने का काम कर रही हैं। वेब सीरीज, युवाओं के बीच इस दौर का सबसे लोकप्रिय मनोरंजन माध्यम बना हुआ है। इसकी पहुँच दिन प्रतिदिन बढ़ती ही रही है। इस शोध अध्ययन का उद्‌देश्य युवाओं की मानसिक व व्यावहारिक धारणाओं में आ रहे परिवर्तन को देखना है। आँकड़ो का संग्रह उत्तर प्रदेश के सर्वाधिक शहरी क्षेत्र वाले शहर लखनऊ से किया गया है। इस शोध का उद्देश्य युवाओं में वेब सीरीज देखकर आने वाले व्यावहारिक बोध की समीक्षा करना है।

शब्द कुंजी- वेब सीरीज, ओटीटी, बौद्धधिक अभिवृत्ति, इंटरनेट, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, भारतीय सामाजिक संस्कृति, सांस्कृतिक मूल्य।

प्रस्तावना

इंटरनेट संचार माध्यम के लिए आधुनिक समय का सबसे प्रभावी व लोकप्रिय साधन है। इसकी उपयोगिता से दुनिया का प्रत्येक व्यक्ति लाभान्वित हो रहा है। ओटीटी (ओवर-दा-टॉप) पर उपलब्ध वेब सीरीज देखने का सुगम आनंद इंटरनेट की सहायता से प्राप्त किया जा रहा है। वेब सीरीज दुनिया में मनोरंजन बाजार का सबसे अधिक रेवेन्यू बनाने वाले साधनों में से एक है (Statista.com)। इसकी बढ़ती लोकप्रियता समय-दर-समय इसमें इज़ाफ़ा कर रही है। ओटीटी कंपनियाँ, वीडियो ऑन डिमांड, सब्सक्रिप्शन आधारित, पे-प्रति-व्यू एवं विज्ञापन के जरिये के मुनाफा जरिए प्राप्त कर रही हैं। किसी भी प्रकार के कठोर दिशा-निर्देशों से मुक्त होने के कारण वेब सीरीज सामग्री का मात्र उद्‌देश्य पैसा कमाना हो जाता है। जिसके कारण कई बार वेब सीरीज में दिखाई जाने वाली सामग्री का नकारात्मक प्रभाव दर्शकों पर पड़ता है।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो वेब सीरीज की विषय वस्तु कई बार सांस्कृतिक मूल्यों को हाशिए पर रखकर विशुद्‌ध धनोपार्जन के उद्‌देश्य के लिए बनाई जाती है। मिर्जापुर, सेक्रेड गेम, कोहरा, पाताल लोक, जैसे वेब शो से समाज में अनैतिकता, अपसंस्कृति और उच्छश्रृंखलता को बढ़ावा मिलता है।

इस अध्ययन के दौरान शोधकर्ता ने पाया कि वेब सीरीज में अधिक संलिप्तता के कारण युवाओं की संज्ञानात्मक क्षमता में परिवर्तन हो रहे हैं। जिसके चलते भारतीय समाज में प्रचलित एवं पारम्परिक रीति-रिवाजों सांस्कृतिक धारणाओं के प्रति युवाओं की राय में भिन्नता है। भारतीय संस्कृति के प्रति युवा अतिसंवेदनशील होते जा रहे हैं

लाइमलाइट नेटवर्क सर्वे की 2018 में प्रकाशित एक रिपोर्ट बताती कि भारत में लोग प्रत्येक सप्ताह 8 घंटे 29 मिनट का समय इंटरनेट पर देते हैं, जो कि वैश्विक स्तर पर 6 घंटे 45 मिनट देखे जाने से अधिक है। यानी भारतीय दर्शक ऑनलाइन स्ट्रीमिंग बड़ी मात्रा में पसंद करते हैं। भारत में युवाओं के बीच वेब सीरीज लोकप्रियता का कारण कम दाम व अच्छी स्पीड वाले इंटरनेट डाटा को मान सकते हैं। अतः हम निस्संदेह यह कह सकते हैं कि क्यों युवा अपना अधिक समय इंटरनेट पर बिताता है। सभी ओटीटी कंपनियाँ भारतीय मनोरंजन की दुनिया में लोकप्रिय बनती जा रही हैं, जिसके चलते यहाँ इनका विस्तार तेजी से बढ़ रहा है। इंटरनेट आधारित इस माध्यम ने टेलीविज़न व सिनेमा के उद्योग को एकदम से बदल कर रख दिया है। क्योंकि इसका ध्येय ज्यादा से ज्यादा वीडियो अपलोड कर बाजार में अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाना है... (डॉ भरत धीमान, 2021)

वेब सीरीज एवं अन्य ऑनलाइन प्लेटफॉर्म का लक्ष्यात्मक दर्शक युवा है। इस शोध का अध्ययन भी युवाओं को ध्यान में रख कर किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य वेब सीरीज में दिखाई गयी सामग्री के कारण युवाओं में भारतीय सामाजिक संस्कृति व रीति रिवाजों के प्रति आये बदलावों को समझना है।

साहित्य अवलोकन

भारतीय परिवेश में तैयार वेब सीरीज मुख्यतः भारतीय सामाजिक संस्कृति पर आधारित न होकर पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित होती है, जिसे भारतीय दर्शकों पर मढ़ना चाहते हैं। अधिकतर वेब सीरीज में आप देखते होंगे कि पुरुष पात्र अनैतिक आचरण व गतिविधियों में संलिप्त दिखाई देते हैं तथा महिला चरित्रों की प्रस्तुति भी नकारात्मक रूप में प्रदर्शित की जाती है।

तकनीक के विकास दौर में मनोरंजन माध्यम का जो रूपांतरण हुआ है उससे डिजिटल ऑनलाइन (ओटीटी) का बाजार सबसे अधिक लाभान्वित हुआ है। अत्यधिक देखे जाने वाले ओटीटी जैसे कि नेटफ्लिक्स, हॉटस्टार, ऐमजॉन प्राइम ने वेब सीरीज तक युवाओं की पहुँच को गतिशीलता प्रदान की है एवं लाइव देखने की सुविधाओं को सुगम बनाया है। यह सब स्मार्टफोन व इंटनेट की मदद से और आसान हो पाया है, साथ ही दर्शक अपनी इच्छा अनुसार विशेष शैली की वेब सीरीज का चयन भी कर सकते हैं।

एवर्ट एम रोजर्स का डिफ्यूजन ऑफ़ इनोवेशन का नियम इस बात की पुष्टि करता है कि कैसे टेलीविज़न सिनेमा व अन्य संचार माध्यम सामाजिक संस्कृति को बदलते हैं। डिफ्यूजन एक प्रकार का सम्प्रेषण है जो समाज में नवाचार के प्रसार का काम करता है। वेब सीरीज द्वारा अपनाई जा रही भाषा किशोर वय एवं युवा पीढी को, वे युवक हों या युवतियाँ, एक नई संस्कृति के साँचे में ढाल रही है जो मिली जुली प्रकृति की है अर्थात जो न पूरी देसी ही है और न निरी पश्चिमी। जॉर्ज गर्बनर का कल्टीवेशन सिद्धांत यह बताता है कि कैसे मीडिया का लंबे समय तक संपर्क दर्शकों की वास्तविक धारणा को बदल देता है। गर्बनर, अपने सिद्धांत में सृजित भाषा के मीडिया के हिंसक चित्रण पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जिसके मुताबिक संचार माध्यम सृजित भाषा के जरिए हिंसा के सामान्यीकरण की प्रवृत्ति को उसके व्यक्तित्व का हिस्सा बना डालता है।

संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति का एक हिस्सा रहा है, जो अब एकल परिवार की ओर अग्रसर हो गयी है। रघुवीर सिन्हा, अपनी किताब 'डायनामिक्स ऑफ़ चेंज इन मॉर्डर्न हिन्दू फैमिली टॉक्स में ऑरेंस्टीन और मिकलिन (1960) के द्वारा किये गए एक अध्ययन की बात करते हुए कहते हैं, 1911 से 1951 तक भारतीय परिवारों में लोगों की संख्या एक समान नज़र आती थी, लेकिन इसके बाद यह संस्कृति हमारे सामाजिक अभ्यास में कम देखने को मिलती है, लोग संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर अग्रसित हुए हैं- (सिन्हा, 1993)।

समस्या कथन

विविधताओं से भरी भारतीय संस्कृति ने लोगों को हमेशा अपनी ओर आकर्षित किया है। सिनेमा व टेलीविजन प्रदर्शित नाटक व कहानियों ने भारत की संस्कृति को उतना नुकसान नहीं पहुँचाया है जितना कि ऑनलाइन कान्टेट ने। वीडियो स्ट्रीमिंग के इस नए दौर में वेब सीरीज ने फिल्म व टेलीविज़न की जगह ले ली है। इंटरनेट आधारित ओटीटी धनोपार्जन का एक माध्यम है, जहाँ वेब सीरीज कंटेंट का उद्देश्य दर्शकों को लुभाकर मात्र राजस्व कमाना है। वेब सीरीज पर दिखाई जा रही विषाक्त एवं अशोभनीय सामग्री युवाओं को नये-नये शगलों की ओर धकेलते हुए उन्हें विपथगामी करने का काम कर रही है। किशोर-वय के बालकों द्वारा अपनाई जा रही हिंसक वृत्ति के परिणामस्वरूप बालक बम की झूठी अफवाहें नेट के माध्यम से देने में भी नहीं डरते।

इस शोध अध्ययन का उद्‌देश्य वेब सीरीज देखकर भारतीय रीति रिवाजों व संस्कृति के प्रति युवाओं में आ रहे मनोगत परिवर्तन को समझना है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. वेब सीरीज व्यत्पुन्न विसंगतियों द्वारा सामाजिक धारणाओं एवं युवाओं की सोच में आये परिवर्तन का अध्ययन करना।
2. वेब सीरीज प्रसारित कंटेंट के परिणामस्वरूप पारम्परिक रीति-रिवाजों के प्रति युवाओं की मनोगत संवेदनाओं एवं व्यवहार में आये बदलाव का अध्ययन करना।
3. वेब सीरीज में दिखाये जाने वाले कंटेंट के परिणामस्वरूप भारत के वर्तमान सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिदृश्य में आने वाले परिवर्तन का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

इस शोध पत्र में शोधकर्ता ने मात्रात्मक विधि का प्रयोग किया है। जिसका उद्‌देश्य वेब सीरीज में दिखायी गयी सामग्री के कारण भारतीय संस्कृति के प्रति युवाओं में हो रहे व्यावहारिक प्रभाव का अध्ययन करना है। अध्ययन हेतु नमूनों का चयन उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ से किया गया है। अध्ययन के दौरान शोधकर्ता ने नमूना संकलित करने के लिए उद्‌देश्यपूर्ण प्रतिचयन पद्धति का उपयोग कर 405 उत्तरदाताओं से आँकड़े एकत्रित किये हैं। अध्ययन हेतु 19 से 30 उम्र के युवाओं का चयन चयन किया गया है।

आँकड़ों की समीक्षा

आयु वर्ग

क्रम	आयुवर्ग	प्रतिशत
1.	19 से 22 वर्ष	38.3
2.	23 से 26 वर्ष	28.4
3.	27 से 30 वर्ष	33.3

यह शोध अध्ययन, युवा उत्तरदाताओं से लिये गए आँकड़ों पर आधारित है। जहाँ 19 से 22 वर्ष के युवाओं द्वारा वेब सीरीज देखने का प्रतिशत 38.3 प्रतिशत है। 28.4 प्रतिशत वे युवा हैं, जिनकी आयु 23 से 26 वर्ष है। जबकि 27 से 30 वर्ष के युवाओं का प्रतिशत 33.3 है।

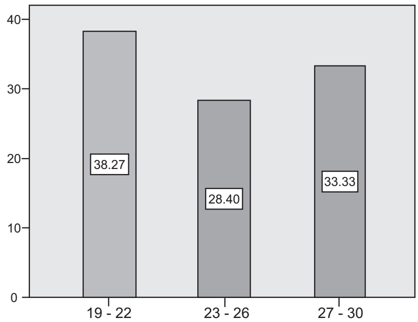

लिंग

क्रम	लिंग	प्रतिशत
1.	स्त्री	43.7
2.	पुरुष	56.3

लिंग आधारित वर्गीकरण करने पर प्राप्त आँकड़ों का 43.7 प्रतिशत महिलाएँ हैं और 56.3 प्रतिशत पुरुष हैं। महिला उत्तरदाताओं के आँकड़े सुनिश्चित करते हैं कि महिलाएँ भी वेब सीरीज देखने में रुचि रखती हैं।

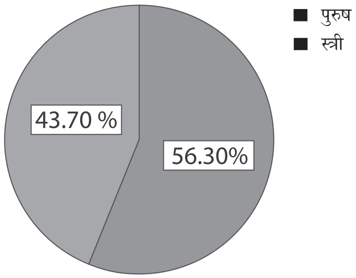

उत्तरदाताओं से पूछे गए प्रश्न

प्रश्न 1. क्या वेब सीरीज शो समाज की धारणा बदल रहे हैं?

मापन बिंदु	आवृत्ति	प्रतिशत
दृढ़ता से सहमत	110	27.16
सहमत	100	49.38
तटस्थ	81	20.00
असहमत	14	3.45
दृढ़ता से असहमत	-	-
कुल	405	100

वेब सीरीज के चलते समाज में व्याप्त धारणाओं पर क्या प्रभाव हो रहा है? प्रश्न का उत्तर देते हुए 310 (75.54%) उत्तरदाताओं ने सहमति प्रदान की है और 81 (20.00%) लोगों ने इस पर किसी भी प्रकार की सकारात्मक या नकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करने की बजाय तटस्था दिखायी है। जबकि 14 (03.45%) उत्तरदाताओं ने वेब सीरीज के कारण समाज की धारणा बदलने पर असहमति व्यक्त की है।

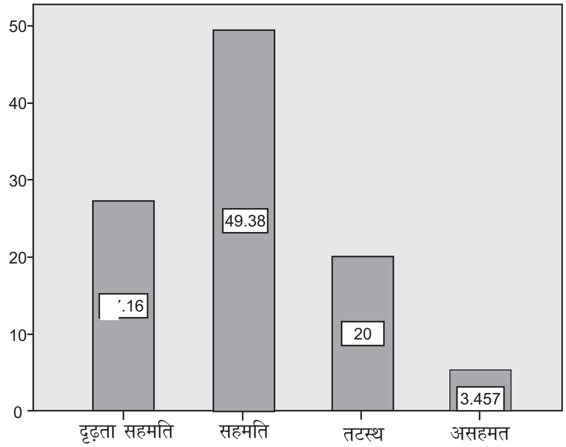

प्रश्न 2. क्या वेब सीरीज की कहानी/कथन भारतीय समाज की संस्कृति को बदल रही है?

मापन बिंदु	आवृत्ति	प्रतिशत
दृढ़ता से सहमत	82	22.0
सहमत	182	44.9
तटस्थ	115	28.4
असहमत	19	4.7
दृढ़ता से असहमत	-	-
कुल	405	100

प्रस्तुत आरेख के अनुसार 270 (66.90%) उत्तरदाता यह मानते हैं कि, वेब सीरीज कंटेंट से भारतीय समाज की संस्कृति बदल रही है। 19 (4.70%) लोगों ने इसके विपरीत प्रतिक्रिया व्यक्त की। हालाँकि 115 (28.40%) उत्तरदाताओं ने इस पर तटस्थ प्रतिक्रिया प्रकट की है

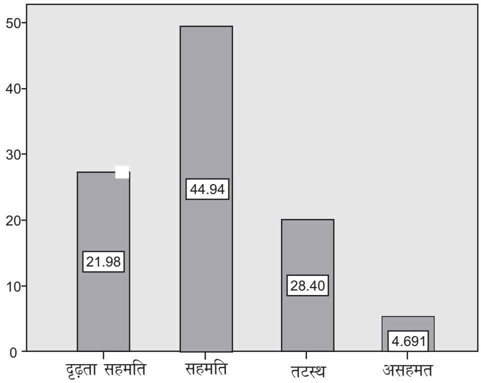

प्रश्न 3. क्या वेब सीरीज में दिखायी जाने वाली संस्कृति युवाओं को भारतीय सामाजिक संस्कृति से विमुख कर रही है?

मापन बिंदु	**आवृत्ति**	**प्रतिशत**
दृढ़ता से सहमत	89	22.0
सहमत	151	37.3
तटस्थ	105	25.9
असहमत	60	14.8
दृढ़ता से असहमत	-	-
कुल	405	100

युवाओं को भारतीय सामाजिक संस्कृति से विमुख करने पर, 240 (59.30%) उत्तरदाताओं ने यह माना है कि वेब सीरीज में दिखायी गयी सामग्री ऐसा कर रही है। 105 (25.90%) उत्तरदाताओं ने सहमत या असहमत के बजाए तटस्थ प्रतिक्रिया व्यक्त की। 60(14.80%) लोगों ने असहमत प्रतिक्रिया व्यक्त कर यह माना कि युवाओं को भारतीय सामाजिक संस्कृति से विमुख करने में वेब सीरीज में दिखायी गयी सामग्री की कोई भूमिका नहीं है।

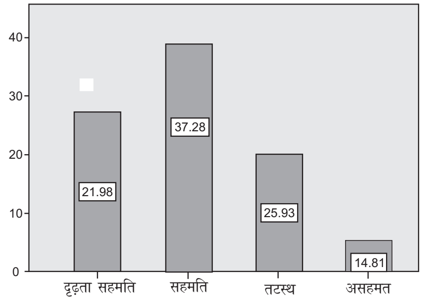

प्रश्न 4. क्या वेब सीरीज शो युवाओं की सोच बदल रहे हैं?

प्रतिक्रिया	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	370	91.4
नहीं	35	8.6
कुल	405	100

वेब सीरीज देखने से युवाओं की सोच में परिवर्तन आने से संबंधित पूछे गये प्रश्न पर 370 (91.40%) उत्तरदाताओं ने यह माना कि ऐसा हो रहा है। वहीं सिर्फ 35 (8.6%) वेब सीरीज दर्शकों ने इस बात से इंकार किया कि वेब सीरीज से युवाओं की सोच में बदलाव आ रहा है।

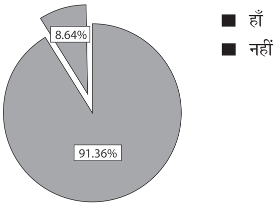

प्रश्न 5. क्या वेब सीरीज मौजूदा सामाजिक रीति-रिवाजों के प्रति युवाओं की संवेदना एवं विचार को बदल रहे हैं?

प्रतिक्रिया	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	258	63.7
नहीं	16	4.0
कुछ कह नहीं सकते	131	32.3
कुल	405	100

रीति-रिवाजों को लेकर युवाओं से पूछे उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया कि वेब 258 (63.70%) उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया कि वेब सीरीज मौजूदा सामाजिक रीति-रिवाजों के प्रति युवाओं की संवेदना/विचार को बदल रही है। 131 (32.30%) युवाओं ने संबंधित प्रश्न पर 'कुछ कह नहीं सकते' प्रतिक्रिया व्यक्त की है। जबकि 16 (4.00%) उत्तरदाताओं ने इस बात से अस्वीकार किया कि वेब सीरीज मौजूदा सामाजिक रीति-रिवाजों के प्रति युवाओं की संवेदना को बदल रहा है।

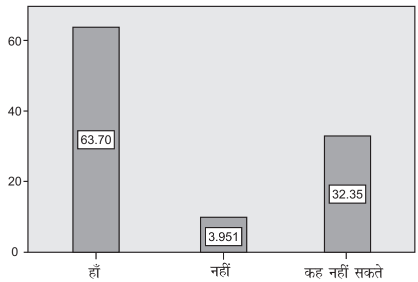

प्रश्न 6. क्या वेब सीरीज देखने के बाद उसके कंटेंट के अनुसार युवाओं की राय में परिवर्तन आता है?

प्रतिक्रिया	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	358	88.4
नहीं	47	11.6
कुल	405	100

358 (88.40%) उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया कि वेब सीरीज देखने के बाद उसके कंटेंट के प्रभावोपरांत युवाओं की राय में परिवर्तन आता है। 47 (11.60%) ने संबंधित प्रश्न पर अपनी नकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की है।

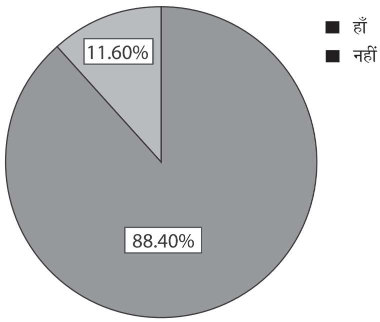

प्रश्न 7. क्या वेब सीरीज कंटेंट के हिसाब से युवाओं की राय में बदलाव आता है?

प्रतिक्रिया	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	196	48.4
नहीं	209	51.6
कुल	405	100

वेब सीरीज कंटेंट के हिसाब से उत्तरदाताओं की स्वयं की राय में परिवर्तन को सबसे अधिक 209 (५१.६द्ध%) युवाओं ने अस्वीकार किया जबकि 196 (48.40%) ने यह माना कि, वे, वेब सीरीज कंटेंट के हिसाब से अपनी राय में बदलाव देखते हैं।

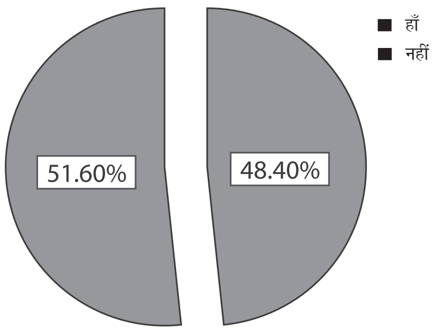

प्रश्न 8. क्या आप अपनी सोच को वेब सीरीज के कथन के अनुसार विकसित करते हैं?

प्रतिक्रिया	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	166	41.0
नहीं	239	59.0
कुल	405	100

239 (59.00%) उत्तरदाताओं ने इससे इंकार किया कि वे अपनी सोच को वेब सीरीज कथन के अनुसार विकसित करते हैं। जबकि 166 (41.00%) उत्तरदाताओं ने इसे स्वीकार किया।

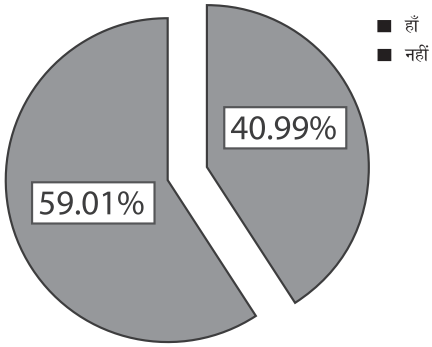

शोध परिणाम

- प्राप्त आँकड़ों से यह सुनिश्चित होता है कि वेब सीरीज से समाज की धारणा बदल रही है। हालाँकि यह बदलाव पूर्णतः नहीं है, क्योंकि तटस्थ प्रतिक्रिया से उन वेब सीरीज दर्शकों की सोच का पता चलता है जो यह नहीं मानते कि ऐसा पूर्णता से हो रहा है और न ही वे पूर्णतः इससे इन्कार करते हैं। परन्तु अधिसंख्या उत्तरदाताओं का सहमत जवाब उन पर यह जरूर बताता है कि वेब सीरीज का प्रभाव उन पर पड़ रहा है जिससे सामाजिक धारणा नयी दिशा में परिवर्तित हो रही है।

- उत्तरदाता यह मानते हैं कि वेब सीरीज का कंटेंट भारतीय समाज को बदल रहा है। इससे सिद्ध होता है कि संचार माध्यम किसी संस्कृति को स्थापित करने एवं उसे बदलने में सक्षम होते हैं। वेब सीरीज में दिखाया गया कंटेंट कई बार अनैतिकतापूर्ण व अशोभनीय होता है, परिणामस्वरूप अपने दुष्प्रभाव से पारम्परिक स्थापित संस्कृति को उससे, हानि पहुँचती है।

- व्याप्त सांस्कृतिक व्यवस्था किसी समाज में जीवन निर्वहन के लिए एक व्यावहारिक पद्धत्ति होती है जो निरंतर पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते हुए संतुलित समाज के निर्माण में योगदान देती है। जबकि प्राप्त आँकड़ों से यह तय होता है कि वेब सीरीज में दिखायी जाने वाली संस्कृति युवाओं को भारतीय सामाजिक संस्कृति से विमुख कर रही है। वर्जित अशोभनीय व असहज दिखने वाली सामग्री की समाज में सहज ग्राह्ता अपना स्थान निर्धारित कर रही है।

- उत्तरदाता यह मानते हैं कि वेब सीरीज से युवाओं की सोच में बदलाव हो रहे हैं। ये बदलाव वेब सीरीज में प्रदर्शित सामग्री की रचनात्मक अभिव्यक्ति की प्रतिक्रिया के परिणाम के रूप में प्रकट हो रहा है।

- ज्यादातर उत्तरदाता यह मानते हैं कि वेब सीरीज मौजूदा सामाजिक रीति-रिवाजों के प्रति युवाओं की संवेदना को बदल रही हैं। वेब सीरीज में दिखायी गयी सामग्री दर्शकों की चेतन अवस्था को प्रभावित कर रही है, जिससे उनकी सोच एवं विचार में परिवर्तन हो रहा। यहाँ यह भी विचारणीय है कि कई बार यह परिवर्तन विपरीत संवेदनाओं को उत्पन्न करने का काम करते हैं।

- वेब सीरीज कंटेंट के अनुसार अपनी सोच विकसित करने को लेकर ज्यादातर उत्तरदाता यह मानते हैं कि वे ऐसा नहीं कर रहे हैं। प्राप्त आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि, वेब सीरीज के बढ़ते प्रभाव से इसके दर्शकों की संवेदनाओं में परिवर्तन तो देखने को मिलते हैं परन्तु ये इतने प्रबल नहीं होते जिससे युवा अपनी एक मुकम्मल सोच विकसित कर सके। क्योंकि विकसित सोच के निर्धारण में वातावरण के अन्य घटक भी निर्णायक होते हैं।

निष्कर्ष

शोध अध्ययन का परिणाम यह सुनिश्चित करता है कि वेब सीरीज की प्रभावशीलता से युवाओं की जीवनशैली में बहुआयामी परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। संचार माध्यम ही वास्तविक सन्देश होता है। जिस प्रकार के सम्प्रेषित वातावरण में व्यक्ति संलिप्त रहता है, उसका व्यक्तित्व भी उसी को धारण करता है। वेब सीरीज की बढ़ती लोकप्रियता से यह स्पष्ट होता है कि यह समाज की धारणा को बदल रहा है। इसमें दिखायी गयी सामग्री अतिसंवेदनशील भी होती है जिससे युवाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जो कि उनकी मानसिक चेतन अवस्था को किसी संस्कृति के प्रति बदलाव करने में मुख्य भूमिका निभाता है। वेब सीरीज पर दृश्यात्मक कंटेंट कई बार इतने वर्जनीय एवं अशोभनीय होते हैं जिन्हें सार्वजनिक वातावरण में देखना मुश्किल होता है। हालाँकि सभी वेब सीरीज का कंटेंट एक जैसा नहीं होता लेकिन अधिसंख्य वेब सीरीज संस्कृति के सघन माध्यम का हिस्सा नहीं होते।

अध्ययन के परिणाम स्पष्ट तौर पर इंगित करते हैं कि वेब सीरीज के चलते मौजूदा सामाजिक रीति-रिवाजों के प्रति युवाओं की संवेदना में बदलाव हो रहे हैं। एक दौर था जब सिनेमा को समाज का आईना माना जाता था, समाज से सिनेमा प्रभावित होता था, युगीन विसंगतियों और उनके विरूद्ध से संघर्ष शील चेतना का प्रदर्शन होता था। वेब सीरीज चित्रपट की दुनिया में क्रांतिकारी बदलाव अवश्य है लेकिन अपनी विसंगतियों के परिणामस्वरूप मानवीय संवेदनाओं के स्तर पर जैसे परिवर्तन अपेक्षित थे वे हासिल होते नहीं दिखते। नतीजा विशाल युवा-पीढ़ी भारतीय धर्म, दर्शन, विचार, संस्कार व संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। परिणमस्वरूप पारिवारिक मूल्यों का क्षरण हो रहा है। वेब सीरीजों के मद्देनजर किशोर व युवाओं में हिंसा वृत्ति व असहिष्णुता प्रवृत्ति बलवती हो उनके मानव सहज गुणों की शत्रु बन बैठी है। सोशल लर्निंग थ्योरी के अनुसार जब कोई दर्शक किसी संचार माध्यम से प्रभावित होता है तो उससे समाज व परिवार में व्याप्त धारणाएँ भी प्रभावित होती हैं। अतः वेब सीरीज की बढ़ती प्रभावशीलता एक संकेत है भारतीय समाज की बदलती अवधारणा का।

सन्दर्भ सूची

- Dhiman, Dr. Bharat. (2021). Psychological Impact of Web Series and Streaming Content: A Study on Indian Youth. Global Media Journal. Volume 19, Issue 46. Page 1-7.

- Vijaykumar, Vaishnav. (2021). Portrayal of Female Identity in Digital Media: An Investigation Based on Selected Indian Web Series. International Journal of Creative Research Thoughts. Volume 9, Issue 3. March 2021.

- Limelight Network. 2018. 'State of Online Vedio'.
- Sinha, Raghuvir. (1993). Dynamics of change in the modern hindu family, (ed. 1) concept publishing co.
- Agarwal, Swati. & Das, Moumita. (2022). Indian Web Series - Revolutionising the Portrayal of Indian Women in Mainstream Media. IJCIRAS. Volume 4, Issue 8. Page 95,100.
- Nandkumar, S. (20211). The Stereotypical Portrayal of Women III Commercial Indian Cinema: MA thesis: University of Houston- Retrieved from ical Portrayal of Women III Commercial Indian Cinema: MA thesis: University of Houston. Retrieved https://uh-ir.tdl.org/bitstream/handle/10657/217/NANDAKUMAR-.pdf?sequence =2-isAllowed=y
- Pendakur, M. 2003. Indian Popular Cinema: Industry, Ideology, and Consciousness. Cresskill, NJ: Hampton Press.
- Gandhi, Divya. 2023. Children of the Web. The Hindu. July 04, 2023. Retrieved from https://www.thehindu.com/society/children-of-the-web-article67014103.ece
- कुमार, कुलदीप, और गंगवार, डॉ. रचना, (2021). भारतीय सामाजिक मान्यताएँ और वेब सीरीजः एक अध्ययन, शोध संचार बुलेटिन खंड 11, संस्करण 41. पृष्ठ संख्या 26-30.

मीडिया में समाचार एजेंसियों की भूमिका

डॉ. रूपचन्द गौतम

सूचना तकनीक ने समूची दुनिया को हाथ की मुट्ठी में कैद कर दिया है। क्षण भर में इंटरनेट के जरिए सूचनाओं का आदान-प्रदान हो जाता है। हजारों किलोमीटर दूर बैठे व्यक्ति से मोबाइल के माध्यम से आप बातचीत कर सकते हैं। एजेंसियों के माध्यम से देसी व विदेशी खबरों को अखबार हमारे सामने परोस रहे हैं। टेलीविजन पर फोटो के साथ घटनास्थल से हम रू-ब-रू हो रहे हैं तथा रेडियो पर खबरों को सुन रहे हैं। उक्त माध्यमों में समाचार एजेंसियों की भूमिका पहले की अपेक्षा नई सदी में और बढ़ी है। समाचार एजेंसियों का कार्य समाचार-पत्र एवं रेडियो, टेलीविजन की भाँति ही होता है। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, साहित्यिक, स्वास्थ्य, कृषि, प्रौद्योगिकी के अलावा समाचार एजेंसियाँ धरना-प्रदर्शन और दुर्घटना के समाचार संकलित करती हैं। अधिकांश अखबार समाचार एजेंसियों पर ही आश्रित हैं। जो समाचारों को ज्यों का त्यों प्रकाशित करते हैं पर कुछ समाचार-पत्र ऐसे भी हैं जो एजेंसी के समाचार में काँट-छाँट करके प्रकाशित करते हैं।

समाचार संकलन, फीचर लेखन एवं फोटो को प्रिन्ट एवं इलेक्टॉनिक माध्यमों में प्रकाशनार्थ वितरित करने वाले संगठन को अंग्रेजी भाषा में एजेंसी कहा जाता है। ये एजेंसियाँ अपने संवाददाता स्रोतों से समाचार, फोटोग्राफरों से फोटो तथा विषय विशेषज्ञों से फीचर लिखवाती हैं। समाचार एजेंसियाँ देश के अलावा विदेशों में भी हैं। पत्र-पत्रिकाओं या चैनल आदि के लिए समाचार, फोटो एवं फीचर लेखन प्राप्ति का सुगम माध्यम एजेंसियाँ ही हैं। जब इजराइली बीयर जोसाफाट बुलेल्स स्टाफ एक्सचेंज के समाचार कबूतरों के जरिए भेजता था, यह कहानी अब स्याह शब्दों में इतिहास बन कर रही गई है। खबरों से दुनिया के एक कोने से लोगों को दूसरे कोने के लोगों से रू-ब-रू कराना पहले आसान नहीं था। दैनिक समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं को छोटी से छोटी जगह पर भेजना भी संभव नहीं था। समाचार एजेंसियाँ ही एक समाचार को अपने सभी पाठकों तक एक साथ पहुँचा देती हैं। संचार तकनीकी में आये परिवर्तनों के साथ-साथ एजेंसियों ने भी अपने तौर-तरीके बदले हैं। 'समाचार एजेंसियों का विकास प्रेस पर लगे अनावश्यक प्रतिबंधों को खत्म करने की जरूरत महसूस किए जाने के कारण हुआ।[1] जितनी पुरानी कहानी पत्र-पत्रिकाओं की है ठीक उतनी ही पुरानी लगभग समाचार एजेंसियों की भी है। जैसे पत्रकारिता हमारे देश की विधा नहीं रही, ठीक वैसे ही समाचार एजेंसियों का उद्गम भारत का नहीं है।

''दरअसल समाचार एजेंसियों का उद्गम ब्रिटेन में हुआ। वर्ष 1686 में एडवर्ड लॉयड ने लन्दन की टावर स्ट्रीट में एक कॉफी हाउस खोला था। 'यहाँ पर अलग-अलग इलाकों के व्यापारी आते थे। इनसे मिली जानकारियों को लन्दन के अखबारों तक पहुँचा कर लॉयड को प्रति सप्ताह 21 शिलिंग की आय हो जाती थी।''[2] इस तरह यह पहली समाचार वितरण संस्था अस्तित्व में आई। 'लॉयड की तरह ही अमेरिका

के बोस्टन के एक कॉफी हाउस के मालिक सैमुनल टापलिक ने भी अमेरिका के अखबारों के लिए विदेशी समाचार जुटाने का काम 1801 में प्रारंभ किया।''[3] बाद में ये यूरोप चले गये पर वहाँ जाकर भी इन्होंने उक्त काम को नजर अंदाज नहीं किया बल्कि साहस व धैर्य के साथ समाचार एजेंसी के कार्य को आगे बढ़ाया। जल्द खबर प्राप्त करने के लिए वर्ष 1849 में **हारबर एसोसिएशन** बनाई गयी। इसी दौर में पुर्तगाली चार्ल्स हावा ने **हावा एजेंसी** तथा जूलियस रॉयटर ने भी रॉयटर एजेंसी बनायी। जोसाफाट का जन्म कैसल में हुआ। वर्ष 1844 में इसने इसाई धर्म ही स्वीकार नहीं किया बल्कि अपना उपनाम रॉयटर भी रख लिया। 11 वर्ष बाद वह लन्दन चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने स्टाक एक्सचेंज के कोटेशन तार के द्वारा पेरिस भेजना प्रारंभ किया। सात वर्षों के बाद वे यूरोप के प्रमुख समाचार-पत्रों में संवाद प्रेषित करने लगे। आज एजेंसियों की दुनिया में जो नाम रायटर का सुनते हैं यह उन्हीं के द्वारा बनाई गई समाचार एजेंसी है। लन्दन न्यूयार्क तथा हांगकांग में रॉयटर के तीन समाचार केन्द्र हैं जो दुनिया भर में अपने-अपने श्रोतों के माध्यम से समाचार भेजते हैं।

गौरतलब है कि समाचार एजेसियों की दुनिया के विस्तार में समुद्री परिवहन और व्यापारियों ने बड़ा योगदान दिया। पर समाचार एजेंसियों के माध्यम से अखबारों तक समाचार पहुँचने में समय अधिक लगता था। मसलन नैपोलिनयन बोनापार्ट का निधन 5 मई 1821 को सेंट हेलना द्वीप में हुआ था पर पेरिस तक यह खबर 5 जुलाई 1821 को पहुँच पाई'।[4] यानी दो महने बाद। पॉल जूलियस रॉयटर ने समाचार एजेंसी के माध्यम से खबरों शीघ्र भेजने का काम किया। 'सेवा के लिए उस समय भारतीय ग्राहकों से केवल वितरण शुल्क ही लिया जाता था।[5] रॉयटर ने सबसे पहले समुद्री केबलों के जरिए नई संचार व्यवस्था का इस्तेमाल करना शुरू किया। उक्त व्यवस्था से समय की भारी बचत हुई। आज रॉयटर अखबारी खबरों के साथ-साथ फोटो, फीचर व टीवी. समाचारों को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर वितरित करती है। दो हजार संवाददाता के साथ इसका नेटवर्क विश्व में फैला हुआ है। आज दुनिया में 25 से अधिक समाचार एजेंसियाँ काम कर रहीं हैं। इसमें हजारों संवाददाता कार्यरत हैं। 'एक दिन में इस संवाद समिति द्वारा तीन लाख प्राप्त होने वाले शब्दों से संवाद तैयार किये जाते हैं।''[6] ''जर्मन की संवाद समिति डियूट्शे प्रेस एंटूर जिसे संक्षिप्त में **डी.पी.ए.** कहा जाता है। एक दिन में. औसतन लगभग चार सौ समाचार भेजती है, ज्यादातर यह वैज्ञानिक सांस्कृतिक तथा खेल संबंधी समाचार भेजती हैं यह समाचार लैटिन अमेरिका, एशिया अफ्रीका, तथा मध्यपूर्व देशों को समाचार भेजती है।''[7]

टेलीग्राम के आविष्कार के साथ ही समाचार एजेसियों के कामकाज की गति बढ़ी। जो समाचार कई दिनों में अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचता था अब वह मिनटों में पहुँचने लगा। एसोसिएटेड प्रेस का समाचार टेलीग्राम के द्वारा त्वरंत पहुँचने लगा। वर्ष 1934 में **एसोसिएटेड प्रेस** ने विदेश सेवा प्रारंभ की। वर्तमान में उक्त एजेंसी के 1500 से अधिक नियमित ग्राहक हैं। एसोसिएटेड प्रेस ने पायनियक के अधिकार को तोड़ तो दिया लेकिन देश-विदेश में समाचार संकलन की जो तत्परता व उद्यम पहले दिखाई देती वह अब नहीं रही। अन्तरराष्ट्रीय समाचार एजेंसियों के लिए जहाँ बेहतर सुविधा जरूरी है वहीं समाचार की गुणवत्ता भी जरूरी है।

''भारतीय नेताओं व व्यावसायियों की शिकायत थी कि विवादास्पद मुद्दों पर उनके विचारों को लन्दन तक पूरी तरह नहीं पहुँचाया जा रहा है, इन्हीं परिस्थितियों में **फ्री प्रेस ऑफ इंडिया** न्यूज एजेंसी अस्तित्व में आईं।[8] सर पुरुषोत्तम दास ठाकुरदास एम. आर. जयकर, जी. डी. बिड़ला, सर फिरोज सेठना और बालचंद हीरानंद इसके निदेशक थे। एम. सदानंद इसके कार्यकारी निदेशक बने। ''वर्ष 1927 में फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' की शुरूआत बेहतर तरीके से हुई।''[9] पर बाद के दिनों में अपने क्लेश में ऐसी उलझी कि 1929 में ही चार निदेशकों को अपना त्याग-पत्र देना पड़ा। वर्ष 1931 में पाँचवे निदेशक ने भी अपना त्याग-पत्र दे

दिया। फ्री प्रेस ऑफ इंडिया ने कलकत्ता से **यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया** की शुरूआत की। इसने मोहनदास कर्मचंद गांधी की हत्या का पहला समाचार दिया पर आर्थिक संकट के कारण 1958 में ही बंद हो गई। डॉ. बी. सी. राय को इसके निदेशक मंडल का अध्यक्ष बनाया गया। एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया के पास समाचार भेजने के लिए टैलीप्रिंटर जैसी सुविधाएँ थीं। जबकि यूनाइडेट प्रेस के पास टेलीग्राम जैसी सुविधाएँ थीं। वर्ष 1942 में जब भारत सरकार ने कांग्रेस से जुड़ी गतिविधियों के प्रकाशन पर रोक लगाने संबंधी अधिसूचना जारी की तो यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया को एसोसिएटेड प्रेस और ओरिएंटेड प्रेस ऑफ इंडिया के साथ एक सूची में डाल दिया। **यूनाइटेड प्रेस इंटरनेशनल** अमेरिका की समाचार एजेंसी है। इसको एडवर्ड विल्स स्किप्स ने वर्ष 1907 में स्थापित किया था। प्रांरभिक दौर में यह छोटे समाचार पत्रों को अपनी सेवा प्रदान करती थी। वर्ष 1919 के विश्व युद्ध के समय गलत समाचार देने पर इसकी अस्मिता धूमिल हुई पर जल्दी ही सँभल गई। वर्तमान में यूरोप, दक्षिण अमेरिका, एशिया और आस्ट्रेलिया इसके मुख्य ग्राहक हैं।

विश्व युद्ध के बाद समाचार एजेंसी का वर्ष 1935 में विस्तार हुआ। इसका मुख्यालय पेरिस में है। हावा का उत्तराधिकारी बनने का हावा को विशेष लाभ प्राप्त हुआ। यह विश्व की सबसे बड़ी समाचार एजेंसी बन गई। दस हजार से अधिक समाचार पत्र तथा 30 से अधिक समाचार एजेसियाँ इसकी ग्राहक हैं। 125 से अधिक देशों तक इसका नेटवर्क है। फ्रेंच, अंग्रेजी, स्पेनिश, जर्मन, अरबी भाषाओं के समाचारों का वितरण यह एजेंसी करती है। पश्चिमी देशों के एकाधिकार को रोकने के लिए समाचार एजेंसी बनी। अन्तरराष्ट्रीय समाचार एजेंसी की स्थापना 1917 में पेटोग्राड टेलीग्राफ से जुड़ी। अपने प्रारंभिक काल से ही इस समाचार एजेंसी पर समाजवादी विचारधारा का ही प्रभाव महसूस किया जाता रहा। वर्तमान में इसे इतार तास नाम से जाना जाता है। आज देशी व विदेशी कुल मिलकर बीस हजार से अधिक इसके ग्राहक हैं।''[10] धर्म निरपेक्ष देशों ने 1976 में अंतरराष्ट्रीय समाचार एजेंसी बनाई।

आजादी से पहले पी. टीआई. अंग्रेजी शासन के अनुकूल अंग्रेजी भाषा में समाचार पत्रों को समाचार देती थी पर आजादी के बाद पी. टी. आई. का भारतीयकरण हो गया। इसका नाम (प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया) बदला पर प्रकृति नहीं बदली। यानी पुराने दृष्टिकोण से काम करती रही। इसने 1 फरवरी, 1949 से कार्य करना प्रारंभ किया। इसने रॉयटर के साथ तीन साल का अनुबंध किया। इसके बाद एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इडिया का अधिग्रहण कर लिया। विश्व समाचार एकत्र करने और वितरीत करने के लिए रायटर के साथ बराबरी का समझौता किया। वर्ष 1951 में यह स्वतंत्र रूप से अस्तित्त्व में आई। आज पी. टी. आई. दुनिया की सभी प्रमुख संवाद एजेंसियों से तालमेल करने के कारण एशिया की सबसे बड़ी अंग्रेजी समाचार एजेसियों में से एक है। विश्व के हर कोने में इसके पूर्णकालिक संवाददाता हैं। इसका मुख्यालय मुम्बई में है।

प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया के चलते समाचारों में निष्पक्षता पर सवाल न उठे इसलिए प्रतिस्पर्धा बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय भावनाओं से जुड़ी यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया की स्थापना बिन्दु भूषण सेन गुप्ता ने 1935 में की थी।''[11] आर्थिक तंगी के कारण समाचार एजेंसियों की दुनिया में आगे न बढ़ सकी। 25 वर्ष संघर्ष करती हुई वर्ष 1960 में बंद हो गई। इसके बन्द होने के बाद यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया की स्थापना 1961 में हुई। प्रथम प्रेस आयोग की सिफारिशें इसकी स्थापना में वांछनीय कही जा सकती हैं। यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया का मुख्यालय नई दिल्ली में हैं। प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया के बाद यह देश की बड़ी एजेंसी है।

''प्रादेशिक समाचारों के संकलन के रूप में हिन्दुस्तान समाचार समिति ने समाचार एजेंसी की दुनिया में वर्ष 1949 में दस्तक दी। बम्बई, कोलकाता, पटना, नागपुर, एवं दिल्ली इसके केंद्र बने। वर्ष 1954 में नागरी टेलीप्रिंटर का उद्‌गम होने के बाद हिन्दुस्तान समाचार ने दिल्ली व पटना के बीच संवाद स्थापित किया। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का शुभकामना संदेश उक्त तकनीक का उदहरण बना।

भारतीय भाषाओं के समाचार देने के उद्देश्य से समाचार भारती के नाम से एक समाचार एजेंसी वर्ष 1965 में में अस्तित्त्व में आई। जून, 1975 में आपातकालीन की घोषणा के बाद समाचार समितियों को नियंत्रित करना सरकार ने आवश्यक समझा। समाचार समिति की स्थापना की गई। इसके माध्यम से हिन्दी और अंग्रेजी भाषा में समाचार सेवा प्रदान की जाने लगी।''[12]

इसके बाद टाइम्स ऑफ इंडिया ने अपनी विशेष आंतरिक 'समाचार सेवा' की स्थापना की और विदेशी समाचारों के लिए यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया ने अमरीका का विशेषाधिकार हासिल कर लिया। हिन्दी में समाचार सेवा के लिए यूनाइटेड ऑफ इडिया ने **यूनीवार्ता** की स्थापना 1 मई 1982 को की गई। ''यह मुख्य रूप से छोटे समाचार पत्रों को कम खर्च पर देश-विदेश के समाचार उपलब्ध कराती है।''[13] प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया ने हिन्दी में एक उच्च स्तर पर समाचार सेवा उपलब्ध कराने के लिए **भाषा** को 18 अप्रैल, 1986 को चेष्टा की पर व्यावहारिक रूप में जुलाई, 1986 से अस्तित्व में आई। भाषा ने 15 हजार से अधिक नगरों और कस्बों के सही नामों की प्रामाणिक सूची तैयार की। अब यह अनुवादक न होकर मूलतः समाचार एजेंसी बन गई है। मुख्य रूप से प्रवासी भारतीयों के लिए समाचार उपलब्ध कराने के लिए **इंडिया एब्रोड न्यूज सर्विस** प्रारंभ हुई। देश के सभी राज्यों की राजधानियों में इसके कार्यालय हैं। यह समाचारों के साथ-साथ कला, संस्कृति, रहन-सहन, साहित्य, जनजीवन आदि पर छोटे-छोटे फीचर भी उपलब्ध कराती है। इसके अलावा हिन्दुस्तान समाचार, समाचार भारती, सर्वोदय फीचर सेवा आदि समाचार के अलावा फीचर वितरीत करने में अपनी अहम भूमिका अदा कर रही है। पर्यावरण, मानवाधिकार, आदिवासी संस्कृति के अलावा दलित सवालों को लेकर लोकायन के माध्यम से **लोकायन लोकतंत्र** फीचर मोहनदास नैमिशराय ने जनवरी, 1994 में प्रारंभ की थी। इस लेखक को भी इसमें सहसंपादक के रूप में कार्य करने का अवसर मिला था। एक वर्ष छोटे व बड़े अखबारों को फीचर देने के यह बाद बंद हो गई।

आज टीवी चैनलों की बढ़ती संख्या के कारण विजुअल न्यूज एजेसियों की जरूरत भी बढ़ी है। वर्तमान में एशियन न्यूज एजेंसी ही एक मात्र स्वदेशी विजुअल न्यूज एजेंसी है। अंतरराष्ट्रीय समाचारों के लिए रॉयटर व एपीटीएन नामक दो अंतरराष्ट्रीय विजुअल न्यूज एजेसियाँ ही हैं। जिनकी सेवा सभी देशी न्यूज चैनल लेते हैं। एसोसिएटेड प्रेस ने एपीटीएन की शुरूआत 1994 में की थी। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के बढ़ते दायरे को ध्यान में रखते हुए विजुअल न्यूज एजेसियाँ अभी कम हैं। जरूरत है उक्त क्षेत्र में विजुअल न्यूज एजेसियों की। समाचार एजेंसियों का उद्देश्य आम आदमी को सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्थिति की खबरों से अवगत कराना है। कुल मिलकर यही कहा जा सकता है कि पाठक, श्रोता एवं दर्शक की रूचि ने समाचार एजेंसियों के साथ अखबार के अलावा रेडियो, टेलीविजन को समाचारों का प्रेषण-प्रसारण करने के लिए मजबूर किया है।

संदर्भ

1. भारतीय पत्रकारिता का इतिहास, जे. नटराजन, प्रकाशन विभाग, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली,
2. समाचार अर्थ, अवधारणा और रिपोर्टिंग, अध्ययन सामग्री, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, पृष्ठ-59
3. वही पृष्ठ-60
4. वही
5. भारतीय पत्रकारिता का इतिहास, जे. नटराजन, प्रकाशन विभाग, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ-317

6. जनसंचार, राधेश्याम शर्मा, हरियाण अकादमी, पंचकूला, चंडीगढ़, पृष्ठ-361

7. वही

8. भारतीय पत्रकारिता का इतिहास, जे. नटराजन, प्रकाशन विभाग, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ-317

9. जनसंचार, राधेश्याम शर्मा, हरियाण अकादमी, पंचकूला, चंडीगढ़, पृष्ठ-366

10. वही पृष्ठ-318

11. समाचार अर्थ, अवधारणा और रिपोर्टिंग, अध्ययन सामग्री, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, पृष्ठ-61

12. भारतीय पत्रकारिता का इतिहास, जे. नटराजन, प्रकाशन विभाग, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ-319

13. समाचार अर्थ, अवधारणा और रिपोर्टिंग, अध्ययन सामग्री, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, पृष्ठ-63

फेक न्यूज़ का सामाजिक प्रभाव और उसके समाधान

पूनम कुमारी, डॉ. विजेता तनेजा

सारांश

फेक न्यूज़, या झूठी खबरें, आज के आधुनिक समाज में एक गंभीर समस्या के रूप में सामने आई है। यह न केवल लोगों की सोच और राय को प्रभावित करती है, बल्कि संस्थानों पर भरोसे को भी कमजोर करती है और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को खतरे में डालती है। फेक न्यूज़ का उद्देश्य जानकारी को तोड़-मरोड़कर पेश करना या पूरी तरह से गलत जानकारी देकर लोगों को गुमराह करना है। इसके कारण समाज में भ्रम, असुरक्षा और ध्रुवीकरण बढ़ता है।

फेक न्यूज़ के प्रसार में सोशल मीडिया और प्रौद्योगिकी का अहम योगदान है। सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स पर जानकारी बहुत तेजी से फैलती है, और कई बार बिना किसी सत्यापन के, फेक न्यूज़ व्यापक दर्शकों तक पहुँच जाती है। प्रौद्योगिकी के विकास ने फेक न्यूज़ बनाने और प्रसारित करने की प्रक्रिया को और भी आसान बना दिया है। इसके अलावा, लोगों की संज्ञानात्मक पूर्वाग्रहता (cognitive bias) उन्हें ऐसी खबरों पर विश्वास करने के लिए प्रेरित करती है जो उनके व्यक्तिगत दृष्टिकोण और मान्यताओं से मेल खाती है, जिससे फेक न्यूज का प्रभाव और भी बढ़ जाता है।

फेक न्यूज़ का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यह लोगों के बीच अविश्वास पैदा करती है, जिससे सामाजिक और राजनीतिक ध्रवीकरण बढ़ता है। इसके अलावा, फेक न्यूज़ का प्रभाव सार्वजनिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता है, जैसा कि हमने कोविड-19 महामारी के दौरान देखा, जब झूठी सूचनाओं के कारण अनेक गलत धारणाएँ और भ्रम देश व समाज फैल गए।

इस शोध पत्र में फेक न्यूज़ के विभिन्न पहलुओं, इसकी परिभाषा, कारणों और इसके द्वारा उत्पन्न चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है। यह पत्र विशेष रूप से सोशल मीडिया की भूमिका और प्रौद्योगिकी के योगदान का अध्ययन करता है जो फेक न्यूज़ के प्रसार में सहायक होते हैं साथ ही समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण भी इसमें किया गया है। अंत में, यह पत्र फेक न्यूज़ के प्रभाव को कम करने के लिए संभावित समाधान और रणनीतियों पर चर्चा करता है, जिसमें मीडिया साक्षरता, नियामक उपायों और फेक न्यूज़ के प्रसार को रोकने में प्रौद्योगिकी कंपनियों की भूमिका पर जोर दिया गया है।

परिचय

फेक न्यूज़, या झूठी और भ्रामक जानकारी, जो जानबूझकर समाचार के रूप में प्रस्तुत की जाती है, आज के डिजिटल युग में एक व्यापक और जटिल समस्या के रूप में उभरी है। इसकी उत्पत्ति नई नहीं है,

लेकिन इंटरनेट और सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव ने इसके प्रसार को तेज़ और व्यापक बना दिया है। यह समस्या समाज में कई स्तरों पर प्रभाव डालती है, जिससे जनमत, संस्थानों पर विश्वास, और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को नुकसान पहुँचता है।

फेक न्यूज़ का प्रसार तेजी से हुआ है, खासकर सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म के माध्यम से। सोशल मीडिया की गतिशीलता और व्यापक पहुँच के कारण, जानकारी अब बहुत तेजी से और बिना किसी संपादकीय फ़िल्टर के साझा की जा सकती है। इसका अर्थ है कि झूठी खबरें बिना किसी सत्यापन के व्यापक दर्शकों तक पहुँच सकती हैं, जिससे वे तेजी से वायरल हो सकती हैं। इस तरह की खबरें अक्सर सनसनीखेज होती हैं और लोगों के भावनात्मक पक्ष को प्रभावित करती हैं।

फेक न्यूज़ के प्रसार के पीछे कई कारण हैं। पहला, आर्थिक लाभ की संभावना है। फेक न्यूज़ निर्माताओं के लिए, सनसनीखेज या विवादास्पद खबरें अधिक क्लिक और दृश्यता आकर्षित करती हैं, जिससे विज्ञापन राजस्व बढ़ता है। दूसरा, राजनीतिक उद्देश्यों के लिए भी फेक न्यूज़ का उपयोग किया जाता है, जैसे चुनावों को प्रभावित करने, विरोधियों को बदनाम करने, या जनता की धारणा को किसी विशेष दिशा में मोड़ने के लिए। तीसरा, तकनीकी सुविधाएँ, जैसे बॉट्स और ट्रोल्स, फेक न्यूज़ के प्रसार को और बढ़ावा देते हैं, जिससे यह समस्या और जटिल हो जाती है।

साहित्य समीक्षा

Allcott और Gentzkow (2017) ने सोशल मीडिया और फेक न्यूज़ के प्रभाव पर चर्चा की है, जिसमें उन्होंने 2016 के अमेरिकी चुनाव में फेक न्यूज़ के प्रभाव का विश्लेषण किया। उनका अध्ययन दर्शाता है कि फेक न्यूज़ ने सार्वजनिक राय को प्रभावित किया और चुनावी परिणामों को मोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी प्रकार, Lazer et al. (2018) ने फेक न्यूज़ के वैज्ञानिक अध्ययन पर ध्यान केंद्रित किया और बताया कि यह समाज में विश्वास की क्षति और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के लिए खतरा पैदा करता है।

Vosoughi et al. (2018) के अध्ययन में यह दर्शाया गया कि फेक न्यूज़ का प्रसार सही न्यूज़ की तुलना में तेजी से होता है, और इसका मुख्य कारण सोशल मीडिया एल्गोरिदम है जो सनसनीखेज़ सामग्री को प्राथमिकता देते हैं। McNair (2017) ने भी फेक न्यूज के आर्थिक प्रोत्साहनों की चर्चा की है, जिसमें उन्होंने बताया कि फेक न्यूज़ की कम निर्माण लागत और उच्च विज्ञापन राजस्व की संभावना इसके प्रसार को बढ़ावा देती है।

Wardle और Derakhshan (2017) ने मीडिया साक्षरता को बढ़ावा देने और तथ्य-जाँच संगठनों के समर्थन पर जोर दिया है। उनके अनुसार, मीडिया साक्षरता शिक्षा से जनता को फेक न्यूज़ की पहचान में मदद मिलती है। इसके अलावा, सरकारों और अंतरराष्ट्रीय संगठनों के लिए नियामक ढाँचे विकसित करने की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है, जैसा कि McNair (2017) के काम में देखा गया है।

उद्देश्य और प्रश्न

इस अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य फेक न्यूज़ के सामाजिक प्रभाव और इसके समाधान पर एक आधुनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना है। अनुसंधान के प्रमुख प्रश्न निम्नलिखित हैं:

- फेक न्यूज़ के प्रसार के मुख्य कारण क्या हैं?

- फेक न्यूज़ के समाज पर क्या प्रमुख प्रभाव हैं?
- फेक न्यूज़ के प्रभाव को कम करने के लिए कौन-कौन सी प्रभावी रणनीतियाँ हैं?

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध पत्र में विषयवस्तु-विश्लेषण तकनीक का उपयोग किया गया है। प्रमुख अकादमिक जर्नल, पुस्तकें, और रिपोर्ट्स को चुना गया जो फेक न्यूज़ के प्रभाव, कारण और समाधानों पर प्रकाश डालते हैं। शोध पत्रों, लेखों, और अध्ययनों से महत्वपूर्ण जानकारी और निष्कर्ष एकत्र किए गए हैं ताकि फेक न्यूज़ की प्रकृति, उसका प्रसार, और इसके सामाजिक प्रभाव की पहचान की जा सके।

फेक न्यूज़ के प्रभाव कई प्रकार के होते हैं और समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करते हैं। सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव यह है कि यह सार्वजनिक विश्वास को कमजोर करता है। जब लोग बार-बार झूठी खबरों का सामना करते हैं, तो वे न केवल मीडिया पर, बल्कि संस्थानों और यहाँ तक कि एक-दूसरे पर भी विश्वास खोने लगते हैं। इससे समाज में ध्रुवीकरण बढ़ता है, जहाँ लोग अपने विचारों और पूर्वाग्रहों के आधार पर समूहों में विभाजित हो जाते हैं। इसके अलावा, फेक न्यूज़ का प्रभाव लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं पर भी पड़ता है, क्योंकि इससे चुनावों के दौरान मतदाताओं के निर्णयों में हेरफेर किया जा सकता है। फेक न्यूज़ के कारण स्वास्थ्य, पर्यावरण, और सुरक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी गलत जानकारी फैल सकती है, जो गंभीर परिणाम उत्पन्न कर सकती है।

फेक न्यूज़ से निपटने के लिए कई उपायों की आवश्यकता है। सबसे पहले, मीडिया साक्षरता को बढ़ावा देना आवश्यक है, ताकि लोग जानकारी के स्रोतों का गंभीरता से मूल्यांकन कर सकें और फेक न्यूज़ की पहचान कर सकें। इसके अलावा, प्रौदयोगिकी कंपनियों को अपने प्लेटफॉर्म पर सामग्री की निगरानी बढ़ाने और फेक न्यूज़ के प्रसार को रोकने के लिए एआई और अन्य तकनीकी समाधानों का उपयोग करना चाहिए। सरकारें और अंतरराष्ट्रीय संगठन भी नियामक ढाँचे को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, जिससे फेक न्यूज़ के प्रसार को कम किया जा सके।

फेक न्यूज़, या ''झूठी खबरें'' निम्नलिखित रूप में प्रकट होती है-

1. निर्मित सामग्री (Fabricated Content): यह पूरी तरह से गलत जानकारी होती है, जिसे जानबूझकर गढ़ा गया होता है और इसका मुख्य उद्देश्य पाठकों को गुमराह कर भ्रमित करना होता है।
2. भ्रामक सामग्री (Misleading Content): यह जानकारी तथ्यात्मक रूप से सही हो सकती है, लेकिन पाठकों को गुमराह करने के उद्देश्य से उसकी व्याख्या इस तरीके से की जाती है कि वे गलत धारणाएँ उत्पन्न करें। वास्तविक स्थिति से अलग अर्थ दे।
3. धोखाधड़ी वाली सामग्री (Imposter Content): यह फेक न्यूज़ का एक अन्य रूप है, जिसमें वैध समाचार संगठनों की नकल करने वाली वेबसाइटें या समाचार स्रोत शामिल होते हैं। यह फेक न्यूज़ का एक खतरनाक रूप है।
4. मिथ्या संबंध (False Connection): फेक न्यूज के इस रूप में अक्सर क्लिकबेट (Clickbait) तकनीक का उपयोग किया जाता है, जहाँ सनसनीखेज सुर्खियाँ या भ्रामक चित्रों का इस्तेमाल किया जाता है ताकि अधिक से अधिक लोग उस लेख पर क्लिक करें।

फेक न्यूज़ के प्रसार के कारण

फेक न्यूज़ के प्रसार के लिए निम्नलिखित आधार उत्तरदाई हो सकते हैं-

1. सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म

फेक न्यूज़ के प्रसार में सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म का बहुत बड़ा योगदान है। सोशल मीडिया ने सूचना के प्रसार की गति और पहुँच को नाटकीय रूप से बढ़ा दिया है। पहले जहाँ खबरों के प्रसार में समय लगता था, वहीं अब इंटरनेट और सोशल मीडिया के माध्यम से जानकारी कुछ सैकिंड में दुनियाभर में पहुँच सकती है। इस तीव्र प्रसार के साथ एक और समस्या जुड़ी हुई है- सत्यापन की कमी। सोशल मीडिया पर उपयोगकर्ता अक्सर जानकारी को सत्यापित किए बिना साझा करते हैं परिणामस्वरूप जिस फेक न्यूज़ तेजी से सर्वव्यापी हो जाती है। इसके अलावा, सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म के एल्गोरिदम ऐसी सामग्री को बढ़ावा देते हैं जो अधिक आकर्षक और विवादास्पद होती है, जिससे फेक न्यूज़ को और बढ़ावा मिलता है।

2. आर्थिक प्रोत्साहन

फेक न्यूज़ के प्रसार के पीछे एक प्रमुख कारण आर्थिक प्रोत्साहन है। इंटरनेट पर सामग्री बनाने और प्रकाशित करने की लागत बहुत कम है, लिहाजा इससे प्राप्त संभावित लाभ की गुंजाइश बढ़ जाती है। फेक न्यूज़ वेबसाइटें और ब्लॉग अक्सर सनसनीखेज और विवादास्पद खबरें पोस्ट करती हैं जो अधिक से अधिक क्लिक और ट्रैफ़िक आकर्षित करती हैं। ये क्लिक और ट्रैफ़िक विज्ञापन/सीधे सीधे राजस्व में परिवर्तित होते हैं, जो वेबसाइटों मालिकों के लिए मोटी आय का स्रोत बनता है। इस प्रकार कम लागत और उच्च राजस्व की संभावना फेक न्यूज़ के निर्माताओं के लिए एक मजबूत आर्थिक प्रोत्साहन बन जाती है।

3. राजनीतिक उद्देश्य

फेक न्यूज़ का राजनीतिक उद्देश्यों के लिए भी व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। इसे एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। राजनीतिक हेरफेर के लिए, नागरिकों की राय को प्रभावित करने, विरोधियों को बदनाम करने और चुनावों के परिणामों को बदलने के लिए फेक न्यूज़ का सहारा लिया जाता है। उदाहरण के लिए, चुनाव के दौरान जानबूझकर झूठी जानकारी फैलाई जाती हैं ताकि मतदाताओं को प्रभावित किया जा सके और चुनाव परिणामों को प्रभावित किया जा सके। इस तरह फेक न्यूज सामाजिक विभाजन व साप्रदायिक ध्रुवीकरण को जन्म देने का मूल कारण बनती है।

4. संज्ञानात्मक पूर्वाग्रह

फेक न्यूज़ के प्रसार में मानव मनोविज्ञान, विशेष रूप से संज्ञानात्मक पूर्वाग्रता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लोग उस जानकारी पर विश्वास करने और साझा करने की अधिक संभावना रखते हैं जो उनके पूर्व-मौजूदा विश्वासों और पूर्वाग्रहों के साथ मेल खाती है। इसे पुष्टि पूर्वाग्रह (confirmation bias) कहा जाता है, जहाँ व्यक्ति केवल उन सूचनाओं को चुनते हैं जो उनके मौजूदा दृष्टिकोण की पुष्टि करती हैं और विरोधाभासी जानकारी को नजरअंदाज करते हैं। इस प्रकार, फेक न्यूज़ का प्रसार लोगों के संज्ञानात्मक पूर्वाग्रहों का फायदा उठाता है, जिससे वे इसे बिना सोचे-समझे आगे साझा करते हैं। इसके अलावा, फेक न्यूज़ अक्सर भावनात्मक रूप से आवेशित होती है, जिससे लोग बिना समय गँवाये तत्क्षण साझा करने में उतावलापन दिखाते हैं भले ही वह सच्ची हो या झूठी।

1. सामाजिक विभाजन व ध्रुवीकरण

फेक न्यूज अपने असर से सर्वप्रथम समाज में विद्वेषजनक विभाजन व ध्रुवीकरण को जन्म देकर समाज में अविश्वास की भावना को प्रबल करती है। फेक न्यूज़ अपने तीव्र प्रसार से पारंपरिक मीडिया, सरकारी संस्थानों और यहाँ तक कि सामान्य नागरिकों के बीच कायम आपसी सौहार्द एवं विश्वास को कमजोर कर देती है। जिससे समाज में धार्मिक व सांप्रदायिक असहिष्णुता एवं ध्रुवीकरण बढ़ता है और लोग एक-दूसरे पर संदेह करने लगते हैं।

2. लोकतंत्र के लिए खतरा

फेक न्यूज लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के लिए भी एक गंभीर खतरा है। फेक न्यूज़ का उपयोग अक्सर सार्वजनिक राय को प्रभावित करने और चुनाव परिणामों को विकृत करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार यह लोकतांत्रिक प्रणालियों को कमजोर करता है। अंततोगत्वा फेक न्यूज़ लोकतंत्र को कमजोर करती है।

कोविड-19 (महामारी) के दौरान, फेक न्यूज ने टीकों, उपचारों, और वायरस के प्रसार से संबंधित झूठी जानकारी फैलाकर समाज में अनेक प्रकार की आशंकाएँ भय और भ्रम उत्पन्न कर देश के लोकतंत्र को क्षति पहुँचाने की खूब कोशिशें हुई हैं।

3. सार्वजनिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

कोविड-19 से उत्पन्न आपदा में फेक न्यूज़' के विनाशक रूप ने स्वास्थ्य संबंधी उपचार खासकर टीकों के संबंध में ऐसी गलत जानकारी प्रस्तुत की है कि आपदाग्रस्त नागरिकों का विश्वास ही डोल गया। सार्वजनिक स्वास्थ्य और आपदा से मानव समुदाय की सुरक्षा के लिए इससे बड़ा खतरा क्या हो सकता है।

फेक न्यूज़ के प्रसार में प्रौद्योगिकी की भूमिका

फेक न्यूज़ के प्रसार में प्रौद्योगिकी, विशेष रूप से सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स, की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। सोशल मीडिया एल्गोरिदम को इस प्रकार डिजाइन किया गया है कि वे उन सामग्रियों को प्राथमिकता देते हैं जो अधिकतम जुड़ाव उत्पन्न करती हैं। ये एल्गोरिदम सनसनीखेज और भावनात्मक रूप से आवेशित कंटेंट को बढ़ावा देते हैं, क्योंकि इसे निर्बाध गति से साझा किया जा सकता है और कुछ ही पल में जंगल की आग की तरह यह फैलने लगती है।

इस प्रकार, प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स फेक न्यूज़ के प्रसार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिसे नियंत्रित करने के लिए सख्त उपायों की आवश्यकता है।

फेक न्यूज़ से निपटने की चुनौतियाँ

फेक न्यूज़ से निपटने में निम्नलिखित चुनौतियाँ हमारे समक्ष प्रस्तुत होती हैं-

1. तथ्य और कल्पना के बीच अंतर

ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म पर जानकारी की भारी मात्रा मौजूद होने के कारण, फेक न्यूज़ और विश्वसनीय समाचार स्रोतों के बीच अंतर करना मुश्किल हो जाता है। फेक न्यूज़ को अक्सर भावनात्मक या सनसनीखेज़ भाषा में प्रस्तुत किया जाता है जिससे लोग इसे सत्य मान लेते हैं।

2. नियामक चुनौतियाँ

फेक न्यूज़ के प्रसार को रोकने के लिए आवश्यक नियम और कानून बनाना एक बड़ी चुनौती है। सरकारों को यह सुनिश्चित करना होता है कि वे फेक न्यूज़ के खिलाफ कार्रवाई करते समय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रेस की स्वतंत्रता का उल्लंघन न करें। इसके अलावा, विभिन्न देशों में फेक न्यूज़ के प्रति अलग-अलग दृष्टिकोण और कानूनी ढाँचा होने के कारण भी इसे वैश्विक स्तर पर विनियमित करना कठिन हो जाता है।

3. प्रौद्योगिकीपरक बाधाएँ

प्रौद्योगिकी, विशेष रूप से सोशल मीडिया और अन्य डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म, फेक न्यूज़ के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हालाँकि, प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल फेक न्यूज़ के प्रसार को रोकने के लिए भी किया जा सकता है लेकिन काम यह भी चुनौतिपूर्ण है। ऐसा प्रभावी उपकरण और एल्गोरिदम विकसित करना जो फेक न्यूज़ की पहचान कर उसके प्रसार पर नकेल कस सके एक बेहद जटिल उपकम है। हाँ, यथाशक्ति प्रौद्योगिकीक्षम योद्धा इसकी रोकथाम के उपाय ढूँढ़ रहे हैं।

समाधान और रणनीतियाँ

फेक न्यूज़ चुनौती का समाधान करने के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जो विभिन्न स्तरों पर प्रभावी हस्तक्षेप की माँग करता है। इस दृष्टिकोण में मीडिया साक्षरता, नियामक उपाय, प्रौद्योगिकी कंपनियों की भूमिका, तथ्य जाँच पहल, और सहयोगात्मक प्रयास शामिल हैं।

1. मीडिया साक्षरता शिक्षा

मीडिया साक्षरता शिक्षा फेक न्यूज़ से निपटने के लिए दीर्घकालिक समाधान प्रदान कर सकती है। इसे विशेष रूप से युवाओं के लिए अनिवार्य करना चाहिए, ताकि वे समाचार स्रोतों का गंभीरता से मूल्यांकन कर सकें और फेक न्यूज़ की पहचान कर सकें। मीडिया साक्षरता कार्यक्रमों के माध्यम से, लोगों को यह सिखाया जा सकता है कि कैसे वे सूचना की सच्चाई का परीक्षण करें, तथ्य-जाँच करें, और विविध स्रोतों से क्रॉस-चेक करें। इसके अलावा, सूचना के स्रोत की विश्वसनीयता और संदर्भ की समझ विकसित करने से फेक न्यूज़ के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

2. नियामक उपाय

फेक न्यूज़ के प्रसार को नियंत्रित करने के लिए प्रभावी नियामक उपायों की आवश्यकता है। सरकारें और अंतरराष्ट्रीय संगठन ऐसा ढाँचा विकसित कर सकते हैं जो फेक न्यूज़ को विनियमित करने पर केंद्रित हों। इन ढाँचे में पारदर्शिता, जवाबदेही और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा पर ध्यान केंद्रित किया जा सकता है। इसके लिए कानूनी और नीतिगत उपायों का निर्माण आवश्यक है, जो फेक न्यूज़ के निर्माताओं पर दंडात्मक कार्रवाई सुनिश्चित कर सके, जबकि मीडिया की स्वतंत्रता की भी रक्षा कर सके।

3. प्रौद्योगिकी कंपनियों की भूमिका

सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स और प्रौद्योगिकी कंपनियों को फेक न्यूज़ के प्रसार पर नियंत्रण में अधिक जिम्मेदारी लेनी चाहिए। इसके लिए, उन्हें अपने प्लेटफ़ॉर्म्स पर सामग्री की निगरानी और मूल्यांकन में पारदर्शिता लानी होगी। एआई और मशीन लर्निंग तकनीकों का उपयोग करके फेक न्यूज़ की पहचान और उसे कम करने के उपाय विकसित किए जा सकते हैं। हालाँकि, यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि इन तकनीकों का उपयोग उचित रूप से किया जाए और किसी भी प्रकार की सेंसरशिप से बचा जाए।

4. तथ्य जाँच पहल

स्वतंत्र तथ्य जाँच संगठनों का समर्थन और प्रचार भी फेक न्यूज़ से निपटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तथ्य-जांच संगठनों द्वारा फेक न्यूज़ के खिलाफ सटीक और समय पर जानकारी प्रदान की जाती है, जो सार्वजनिक भ्रम को दूर करने में मदद करती है। इन संगठनों को फंडिंग और संसाधन प्रदान करना, और उनके काम को बढ़ावा देना समाज में सच्ची जानकारी के प्रसार को सुनिश्चित कर सकता है।

5. सहयोग और साझेदारी

फेक न्यूज़ के खिलाफ प्रभावी लड़ाई के लिए सरकारों, मीडिया संगठनों, प्रौद्योगिकी कंपनियों और नागरिक समाज के बीच सहयोगात्मक प्रयास आवश्यक हैं। इन संगठनों के बीच सहयोग और साझेदारी से एक एकजुट मोर्चा बनाया जा सकता है, जो फेक न्यूज़ के प्रभाव को कम करने में मदद कर सकता है। यह साझा प्रयास न केवल फेक न्यूज़ के प्रसार को नियंत्रित करेगा बल्कि एक सशक्त और सूचित समाज का निर्माण भी करेगा।

फेक न्यूज़ के प्रसार ने समाज में सूचना की सटीकता और विश्वास को चुनौती दी है। फेक न्यूज़ की पहचान और सत्यापन करना अत्यंत महत्वपूर्ण है ताकि लोगों को गलत जानकारी से बचाया जा सके और समाज में विश्‍वास बहाल किया जा सके।

सत्यापन के प्रमुख तरीके

- **स्रोत की पुष्टिः** किसी भी समाचार की सटीकता की जांच करने का पहला कदम इसके स्रोत की पुष्टि करना है। विश्‍वसनीय और प्रतिष्ठित समाचार संगठनों द्वारा प्रकाशित समाचार अधिक भरोसेमंद होते हैं। यदि समाचार अनजाने या संदिग्ध स्रोत से है, तो इसे संदेह की दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

- **फैक्ट-चेकिंग वेबसाइट्सः** कई स्वतंत्र फैक्ट चेकिंग संगठनों और वेबसाइट्स जैसे कि Snopes, *FactCheck.org,* और *AltNews* खबरों की सत्यता की जांच करती हैं। ये वेबसाइट्स फेक न्यूज़ और मिथकों को उजागर करने में मदद करती हैं और सटीक जानकारी प्रदान करती हैं।

- **मीडिया साक्षरताः** मीडिया साक्षरता की शिक्षा लोगों को यह सिखाती है कि कैसे वे समाचार स्रोतों को विश्‍लेषित करें और भ्रामक जानकारी की पहचान करें। यह शिक्षा न केवल स्कूलों में बल्कि ऑनलाइन पाठ्यक्रमों और कार्यशालाओं के माध्यम से भी प्रदान की जाती है।

- **पैटर्न विश्लेषणः** टेक्नोलॉजी का उपयोग करके, खासकर एआई और मशीन लर्निंग, फेक न्यूज़ के पैटर्न की पहचान की जा सकती है। यह तकनीक संवेदनशील और अत्यधिक वायरल कंटेंट की पहचान करने में मदद करती है।

- **संदर्भ और क्रॉस-चेकिंगः** समाचार की पुष्टि के लिए अन्य विश्‍वसनीय स्रोतों से क्रॉस-चेकिंग की जाती है। यदि एक ही खबर विभिन्न विश्‍वसनीय स्रोतों से पुष्टि की जाती है, तो उसकी सत्यता की संभावना बढ़ जाती है।

इस बहुआयामी दृष्टिकोण के माध्यम से, फेक न्यूज़ की चुनौती का समाधान संभव है और एक सूचित और सच्ची जानकारी पर आधारित समाज की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए जा सकते हैं।

निष्कर्ष -

फेक न्यूज एक जटिल और बहुआयामी चुनौती प्रस्तुत करती है जो वर्तमान समाज की संरचना को खतरे में डालती है और लोकतांत्रिक प्रणाली को दूषित कर एक स्वस्थ-सशक्त लोकतंत्र की राह में व्यवधान उत्पन्न करती है। फेक न्यूज़ प्रौद्योगिकी के दुरूप्रयोग का परिणाम है लिहाजा इस दिशा में उचित रणनीति व प्रौद्योगिकी नवाचार, मीडिया साक्षरता और नियामक ढाँचे के माध्यम से इसकी रोकथाम संभव है।

संदर्भ

- ऑल्कॉट, एच., और जेंट्ज़कोव, एम. (2017)। 2016 के चुनाव में सोशल मीडिया और फेक न्यूज़।' जर्नल ऑफ़ इकोनॉमिक पर्सपेक्टिव्स, 31(2), 211-2361 https://doi.org/10.1257/jep.31.2.211
- लेज़र, डी. एम., बॉम, एम. ए., बैंक्लर, वाई., बेरीनस्की, ए. जे., ग्रीनहिल, के. एम., मॅकज़र, एफ., और शुडसन, एम. (2018)। फेक न्यूज़ का विज्ञान। साइंस, 359(6380), 1094-10961 https://doi.org/10.1126/science.aao2998
- मैकनेयर, बी. (2017)। फेक न्यूज़ः फॉल्सहुड, फैब्रिकेशन एंड फैंटेसी इन जर्नलिज्म। रूटलेज। https://doi.org/10.4324/9781315695057
- वोसुधी, एस., रॉय, डी., और अरल, एस. (2018)। ऑनलाइन सही और झूठी खबरों का प्रसार। साइस, 359 (6380), 1146-11511 https://doi.org/10.1126/science.aap9559
- वार्डल, सी., और डेरखशान, एच. (2017)। सूचना विकारः अनुसंधान और नीति निर्माण के लिए एक अंतःविषय ढाँचे की ओर। यूरोप की परिषद रिपोर्ट। https://rm.coe.int.information-disorder-toward-an-interdisciplinary-framework-for-researc/168076277c
- सुआरेज-लेडो, वी., & अल्वारेज-गैल्वेज, जे. (2021, 20 जनवरी), सोशल मीडिया पर स्वास्थ्य मिथ्या जानकारी का प्रसारः एक प्रणालीगत समीक्षा. जर्नल ऑफ मेडिकल इंटरनेट रिसर्च, 23 (1), e17187. doi: 10.2196/17187. PMID: 33470931; PMCID: PMC7857950.
- ट्रैवर्स, एम. (2020, 21 मार्च). फेसबुक अन्य किसी भी सोशल वेबसाइट की तुलना में तेजी से नकली समाचार फैलाता है, नए शोध के अनुसार. फोर्ब्स. प्राप्त किया गयाः https://www.forbes.com/sites/traversmark/2020/03/21/facebook-spreads-fake-news-faster-than-any-other-social-website-according-to-new-research/?sh=44f9a7e66e1a
- सुआरेज-लेडो, वी., & अल्वारेज-गैल्वेज, जे. (2021, 20 जनवरी). सोशल मीडिया पर स्वास्थ्य मिथ्या जानकारी का प्रसारः एक प्रणालीगत समीक्षा. जर्नल ऑफ मेडिकल इंटरनेट रिसर्च, 23(1), e17187. doi: 10.2196/17187.
- वॉलब्रेटर, एन., ब्रूक्स, जे.जे., सौसियर, सी.जे., & सुरेश, एस. (2021, नवंबर). सोशल मीडिया पर स्वास्थ्य मिथ्या जानकारी को सुधारने के प्रयासों का प्रभाव मूल्यांकनः एक मेटा-विश्लेषण. हेल्थ कम्युनिकेशन, 36 (13), 1776-1784. doi: 10.1080/10410236.2020.1794553.
- यंग, पी. वी. (1952). वैज्ञानिक सामाजिक सर्वेक्षण और अनुसंधान (3rd संस्करण). न्यूयॉर्कः प्रेंटिस-हॉल.

हिंदी समाचार पत्रों के शीर्षकों में नकारात्मक ध्रुवीय पद का अर्थपूर्ण और सांकेतिक विश्लेषण

इरम अलि अहमद

परिचय

दुनिया की भाषाओं के मूल रूप से दो प्रकार के अर्थ होते हैंरू स्पष्ट अर्थ और निहित अर्थ। अर्थ को विभिन्न शब्दार्थ और व्यावहारिक प्रक्रियाओं के माध्यम से दर्शाया गया है। भाषाविज्ञान में, ध्रुवीय पद एक शाब्दिक वस्तु है जो केवल एक विशेष व्याकरणिक ध्रुवता से जुड़े वातावरण में प्रकट हो सकती है- सकारात्मक या नकारात्मक। नकारात्मक ध्रुवीय पद (Negative Polarity Items) एक व्यंजना है जो नकारात्मक संदर्भों और अन्य शब्दार्थ संबंधी संदर्भों जैसे कि प्रश्न और सशर्त खंड तक सीमित है, हालाँकि इसके शब्दार्थ गुण सकारात्मक संदर्भों में भी होने की अनुमति देते हैं। हिंदी भाषा में कुछ सामान्य एनपीआई ही, भी, बस आदि हैं। हिंदी भाषा में नकारात्मक ध्रुवीय पद (एनपीआई) एक अनिश्चित संज्ञा और एक कण 'भी' से बना है। यह तर्क दिया जाता है कि इस रचना के रचनात्मक शब्दार्थ एनपीआई के रूप में उनके व्यवहार के साथ-साथ मुक्त विकल्प पद (एफसी) के रूप में उनके व्यवहार की व्याख्या करते हैं। समाचार शीर्षक एक बहु-कार्यात्मक लघु पाठ है जो ठोस जानकारी के साथ प्रस्तुत किया जाता है। परंपरागत रूप से, समाचारों को वर्तमान और निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत तथ्यात्मक जानकारी के रूप में वर्णित किया जाता है जो नागरिकों के लिए महत्वपूर्ण और मूल्यवान है। मीडिया और पत्रकारिता में बदलते चलन के साथ, पत्रकारों द्वारा अधिक 'दर्शक संचालित' दृष्टिकोण अपनाया जाता है। ये (लगातार विकसित हो रहे) समाचार मूल्यों पर आधारित हैं। ऐसे विषयों के चयन के लिए संस्थागत मानदंड हैं जिन्हें दर्शकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। हाल के दिनों में, यह देखा गया है कि समाचार लेखक समाचारों के शीर्षकों को तैयार करने और उनके माध्यम से समाचारों के निहित अर्थ को व्यक्त करने में नकारात्मक ध्रुवीय पदों (एनपीआई) का उपयोग कर रहे हैं। एनपीआई शीर्षकों की शब्दार्थता को बढ़ाते हैं। शीर्षकों में व्यंग्यात्मक तत्व को और अधिक स्पष्ट करने के लिए एनपीआई का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में समाचार शीर्षकों में नकारात्मक ध्रुवीय पदों के प्रयोग के दृष्टिकोण से हिन्दी समाचार पत्रों के शीर्षकों में व्यंग्यात्मक तत्व का अध्ययन करने का शोध पत्र प्रयास किया गया है। वर्तमान शोध पत्र के शेष भाग को निम्नानुसार व्यवस्थित किया गया है। खंड 2 एनपीआई पर पूर्व कार्य, हिंदी में एनपीआई, हिंदी में समाचारों की सुर्खियाँ, समाचारों की सुर्खियों की शैली और समाचारों के शीर्षकों पर व्यावहारिक अध्ययन पर चर्चा करता है। खंड 3 में डेटासेट का विवरण और वर्तमान अध्ययन की कार्यप्रणाली प्रस्तुत की गई है। खंड 4 में नकारात्मर्क ध्रुवीय पदों के संबंध में डेटा का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। खंड 5 वर्तमान अध्ययन के प्रमुख निष्कर्षों पर चर्चा करता है। खंड 6 प्रस्तुत शोध-पत्र को सारांशित करता है और भविष्य के शोध पर चर्चा करता है।

1. संबंधित कार्य

इस तथ्य के बावजूद कि हिंदी में नकारात्मक ध्रुवीय पदों का अक्सर उपयोग किया जाता है, इस संदर्भ में हिंदी भाषा पर सीमित और प्रतिबंधित शोध किया गया है। एलन एस (2004) समाचार संस्कृति के बारे में चर्चा करते हैं। यह समाचार पत्र, रेडियो और टेलीविजन पत्रकारिता में 'उद्देश्य' रिपोर्टिंग के उदय के ऐतिहासिक विचार के साथ शुरू होता है। यह समाचारों के निर्माण के तरीके, भाषण की शैली के रूप में इसकी पाठ्य परंपराओं और रोजमर्रा की जिंदगी के हिस्से के रूप में पाठक, श्रोता या दर्शक द्वारा इसकी बातचीत की पड़ताल करता है। यह पाठ लिंगवाद और नस्लवाद की सांस्कृतिक गतिशीलता की भी जाँच करता है क्योंकि वे समाचार कवरेज के विभिन्न उदाहरणों को आकार देते हैं। एलन (2004) मुख्य रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन के अनुभवों से लिए गए उदाहरणों की एक श्रृंखला के आधार पर ऑनलाइन समाचार की घटना का विश्लेषण प्रदान करता है। कुमार राजेश (2013) ने हिंदी में नकारात्मक ध्रुवीय पदों के निषेध और लाइसेंसिंग के वाक्य विज्ञान का वर्णन किया है। यह हिंदी की खंड संरचना को रेखांकित करता है और संरचना के भीतर संवेदनशील नकारात्मक के साथ-साथ घटक नकारात्मक की वाक्यात्मक स्थिति का पता लगाता है। यह तर्क दिया जाता है कि हिंदी निषेध में संवेदनशील नकारात्मक अपने स्वयं के अधिकतम प्रक्षेपण, NegP का नेतृत्व करता है, जिस पर तुरंत TP का प्रभुत्व होता है। क्लॉज स्ट्रक्चर में नेगेटिव मार्करों की स्थिति का पता लगाने के अलावा, यह हिंदी में नेगेटिव पोलरिटी आइटम्स (एनपीआई) के वितरण और उनके लाइसेंसिंग पर सेंसिटिव नेगेटिव द्वारा संरचनात्मक बाधाओं को रेखांकित करता है। पुस्तक का तर्क है कि हिंदी में एक नकारात्मक ध्रुवीय पद को सी-कमांडिंग नेगेटिव मार्कर द्वारा व्युत्पत्ति के दौरान खुले तौर पर लाइसेंस दिया जाता है। होयन्स (2003) ने मीडिया और समाज के बीच संबंधों को समझने के लिए एक रूपरेखा प्रदान की है। लेखक के अनुसार, चित्र और दर्शक पाठकों को अपनी धारणाओं और पारंपरिक जान का गंभीर मूल्यांकन करने में मदद करते हैं। लाहिड़ी (1998) हिंदी में नकारात्मक ध्रुवीय पदों (एनपीआई) का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। वह मानते हैं कि कमजोर हिंदी अनिश्चित काल को एक विधेय के रूप में देखा जाना चाहिए। इस विधेय को हर परिस्थिति में सत्य माना गया है। वह आगे मानते हैं कि 'भी' अनिश्चित काल के साथ केंद्र के साथ जुड़ाव प्रदर्शित करता है, और इससे सकारात्मक संदर्भों में विरोधाभासी प्रभाव पड़ता है। वशिष्ठ (2003) शब्द क्रम और निषेध के बारे में बताते हैं। यह कहा गया है कि निषेध-प्रेरित शब्द क्रम बाधाओं में, प्रतिबंधित शब्द क्रम के द्वारा यह तर्क दिया गया है कि हिंदी में नकारात्मक ध्रुवीय पद (एनपीआई) एलएफ और एस-स्ट्रक्चर में लाइसेंस प्राप्त हैं जबकि अंग्रेजी में एनपीआई लाइसेंसिंग एस स्ट्रक्चर पर होता है।

2. प्रक्रिया

वर्तमान अध्ययन के लिए, सितंबर, 2020 से नवंबर, 2020 के बीच प्रकाशित हुए हिंदुस्तान और दैनिक जागरण जैसे अखबारों से 50 हिंदी समाचारों के शीर्षकों पर अध्ययन किया गया है। इन समाचार पत्रों को विशेष रूप से अध्ययन के लिए चुना गया है क्योंकि भारतीय पाठक सर्वेक्षण (आईआरएस) के अनुसार, मीडिया रिसर्च यूजर्स काउंसिल (MRUC) द्वारा संकलित Q4 2019 में इन समाचार पत्रों को 'सबसे अधिक पढ़े जाने वाले समाचार पत्रों' के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। एक पूर्व अध्ययन के अनुसार, समाचारों के शीर्षकों में मूल रूप से चुनाव अभियानों के दौरान एक निहित अर्थ होता है। अतः उल्लिखित समय अवधि बिहार विधानसभा चुनाव 2020 का प्रतिनिधित्व करती है। इस अध्ययन के लिए डेटा हिंदुस्तान तथा दैनिक जागरण के ई-समाचार पत्रों से एकत्र किया गया है। वर्तमान अध्ययन के लिए दोनों समाचार पत्रों के नई दिल्ली और पटना संस्करण को ध्यान में रखा गया है। एकत्र किया गया डेटा

द्वितीयक डेटा है। इस डेटा पर गुणात्मक शोध किया गया है। मातृभाषा की वृत्ति को ध्यान में रखते हुए डेटा को व्यंग्यात्मक माना गया है। डेटा के संग्रह के बाद, समाचार पत्रों के शीर्षकों में नकारात्मक ध्रुवीय पदों (एनपीआई) के उपयोग के आधार पर भाषाई विश्लेषण किया गया है। एनपीआई को एक भाषाई इकाई के रूप में माना जाता है जो हिंदी समाचार पत्रों के शीर्षकों के निहित अर्थ को चित्रित करने में मदद करता है। विश्लेषण के लिए अनुसंधान की एक अवलोकनात्मक और वर्णनात्मक पद्धति का पालन किया गया है। डेटा के निहित अर्थ को समझने के लिए गुणात्मक विश्लेषण किया गया है।

3. विश्लेषण

समाचार पत्र के शीर्षकों में दर्शकों को लुभाने के लिए रूचि और उत्साह के तत्वों का समावेश होता है। इस उद्देश्य के लिए, समाचार पत्रों के शीर्षकों को चयनात्मकता या वृद्धि, सामान्यीकरण या सरलीकरण, भावुकता या सनसनी के माध्यम से अनुकूलित किया जाता है। यह स्पष्ट है कि सनसनीखेज खबरों के लिए आमतौर पर शीर्षकों को एक निहित अर्थ के साथ लिखा जाता है। यह निहित अर्थ कभी-कभी नकारात्मक ध्रुवीय पदों (एनपीआई) के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। वर्तमान अध्ययन समाचारों के शीर्षकों में नकारात्मक ध्रुवीय पदों (एनपीआई) के उपयोग का विश्लेषण करता है और उन्हें निम्नानुसार वर्गीकृत किया गया हैः

3.1 अवधारक कण

हिंदी में नकारात्मक ध्रुवीय पद (एनपीआई) की तरह व्यवहार करने वाले भाव अनिश्चित या कमजोर विधेय से बने होते हैं जो छोटी मात्रा और एक कण का संकेत देते हैं जिसे अक्सर पारंपरिक व्याकरण में अवधारक कण या एम्फेटिक मार्कर के रूप में वर्णित किया जाता है।

उदाहरणः

(1) 11 घंटे में चंद कदम भी नहीं सरक सके वाहन (हिंदुस्तान; 3 सितंबर, 2020; पृष्ठ 13)

संदर्भः आरा-मोहनिया और आरा-सासाराम राजमार्ग पर यातायात।

अवलोकनः यहाँ, एनपीआई 'भी' की मदद से 11 घंटे के समय में भी वाहनों के थोड़ा भी हिलने-डुलने में सक्षम नहीं होने की विडंबना पर जोर दिया गया है।

(2) पहली बैठक से ही कई नेता नदारद (हिंदुस्तान, 4 अक्टूबर, 2020, पृ.8)

संदर्भः दिल्ली में भाजपा की बैठक का आयोजन।

अवलोकनः दिए गए शीर्षक में, नई दिल्ली में भाजपा आयोजन समिति पर एनपीआई 'ही' की सहायता से एक व्यंग्य किया गया है।

(3) जिंदगी के बाद भी जादू रहेगा (दैनिक जागरण; 29 नवंबर, 2020; पृ.23)

संदर्भः अर्जेंटीना के फुटबॉल खिलाड़ी डिएगो माराडोना का निधन।

अवलोकनः दिए गए शीर्षक में, ९भी९ का उपयोग एक नकारात्मक ध्रुवीय पद के रूप में इस तथ्य पर जोर देने के लिए किया गया है कि फुटबॉल खिलाड़ी का आकर्षण उसकी मृत्यु के बाद भी प्रशंसकों के दिलों में बना रहेगा।

4. खंड निषेध

नकारात्मक ध्रुवीय पद शब्दावल्य क्षेत्र में अलग-अलग प्रकार के होते हैं-

उदाहरण

(4) कोरोना पीड़ित 60-80 फीसद मरीजों में ठीक होने के बाद भी परेशानी (दैनिक जागरण; 10 फरवरी, 2020; पृ.7)।

संदर्भः सितंबर, 2020 के दौरान भारत में कोविड-19 अपडेट।

अवलोकनः दिए गए शीर्षक में, निर्दिष्ट उदाहरण/स्थिति में विडंबना व्यक्त करने के लिए 'भी' का उपयोग नकारात्मक ध्रुवीय पद के रूप में किया गया है, इस तथ्य को नकारते हुए कि 60-80% लोग COVID-19 से उबर चुके हैं।

(5) यहाँ नदी-नहरों का संजाल, फिर भी पानी से सस्ती जान (दैनिक जागरण; 29 नवंबर, 2020; पृष्ठ 6)

संदर्भः नई दिल्ली में जलापूर्ति की स्थिति।

अवलोकनः दिए गए शीर्षक में, नकारात्मक ध्रुवीय पद 'फिर भी' की मदद से एक क्षेत्र की स्थिति पर एक व्यंग्य पारित किया गया है। नकारात्मक ध्रुवीय पद इस संदर्भ/स्थिति में संबंधित क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में पानी मौजूद होने के तथ्य को शब्दार्थ और परोक्ष रूप से नकारता है।

(6) जेल में भी नहीं थम रहा अपराध, होती रहती हैं झड़पें (दैनिक जागरण; 1 सितंबर, 2020; पृष्ठ 20)।

संदर्भः जेल में झड़प की खबरें।

अवलोकनः दिए गए शीर्षक में विडंबना व्यक्त की गई है। नकारात्मक ध्रुवीय पद 'भी' शब्दार्थिक रूप से और परोक्ष रूप से जेल में अपेक्षित मर्यादा को नकारता है।

(7) घन्टे भर टीवी देखने वाले बच्चे भी गणित में फिसड्डी (हिंदुस्तान, 4 सितंबर, 2020; पृष्ठ 22)

संदर्भः मडॉक चिल्ड्रन रिसर्च इंस्टीट्यूट, मेलबर्न के शोधकर्ताओं द्वारा किया गया एक अध्ययन।

अवलोकनः दिए गए शीर्षक में, नकारात्मक ध्रुवीय पद श्भीश् शुाुआत में की गई धारणा को नकारता है यानी कम टीवी देखने वाले बच्चे अपनी पढ़ाई में अच्छा करते हैं, इसलिए, दी गई स्थिति में इसे व्यंग्यात्मक बनाते हैं।

4.1 परिमाणक

हिंदी में नकारात्मक ध्रुवीय पद का उपयोग परिमाणक पद के साथ इस पर जोर देने के लिए या कथन/उच्चारण में इसका समर्थन करने के लिए किया जाता है।

उदाहरणः

(8) मनमानीः दूसरे दिन भी खोली राजेन्द्रनगर व कंकड़बाग मन्डी (हिंदुस्तान; 21 सितंबर, 2020; पृ.12)

संदर्भः बिहार में लॉकडाउन दिशानिर्देशों का उल्लंघन।

अवलोकनः दिए गए शीर्षक में, नकारात्मक ध्रुवीय पद 'भी' का उपयोग परिमाणक पद दुसरे दिन के साथ किया गया है। एक अनुमान लगाया जाता है कि दुकानें लगातार दो दिन राजेंद्रनगर और कंकड़बाग में खुले रहे। दिए गए के माध्यम से व्यक्त निहित अर्थ नियमों और दिशानिर्देशों को बनाए रखने और उनका पालन करने में सरकार की अक्षमता को दर्शाता है।

(9) वीआइपी की नाव भी मझधार में, माँग रही 25 सीट और मिल रही बस दस (दैनिक जागरण; 6 सितंबर, 2020; पृ.11)

संदर्भः बिहार विधानसभा चुनाव 2020

अवलोकनः दिए गए शीर्षक में, दो नकारात्मक ध्रुवीय पदों 'भी' और 'बस' का उपयोग कर परिमाणक पर बल दिया गया है। बिहार विधानसभा चुनाव में पार्टी के सदस्यों की वर्तमान स्थिति के बारे में हास्य पैदा करने के लिए शीर्षक लिखा गया है।

4.2 प्रश्नवाचक

अन्य वर्ग जहाँ नकारात्मक ध्रुवीय पद हिंदी में पाए जाते हैं, वह है प्रश्नवाचक (हाँ-नहीं प्रश्न और साथ ही घटक प्रशन)।

उदाहरणः

(10) ...तो क्या आईपीएल में अब थकने लगा है दुनिया का सर्वश्रेष्ठ फिनिशर माही (हिंदुस्तान; 4 अक्टूबर, 2020; पृ.19)

संदर्भः आईपीएल 2020 में महेंद्र सिंह धोनी का प्रदर्शन।

अवलोकनः इस शीर्षक में, एम. एस. धोनी पर एक प्रश्नवाचक वक्तव्य के रूप में एक व्यंग्य पारित किया गया, जिस पर नकारात्मक ध्रुवीय पद श्तोश के उपयोग पर जोर दिया गया है।

(11) सुशान्त को खाने में धोखे से ड्रग्स तो नहीं देते थे शौविक व सैमुअल (हिंदुस्तान; 5 सितंबर, 2020; पृ.4)

संदर्भः सुशांत सिंह हत्याकांड।

अवलोकनः एक निहित अर्थ नकारात्मक ध्रुवीय पद 'तो' द्वारा चित्रित किया गया है। यहाँ बयान में निहितार्थ को एक पूछताछ वाक्य की मदद से चित्रित किया गया है कि शौविक और सैमुअल सुशांत सिंह की हत्या के लिए जिम्मेदार हैं। बयान में यह भी अनुमान लगाया जा रहा है और दावा किया जा रहा है कि शौविक और सैमुअल की ड्रग्स तक पहुँच थी।

4.3 सामयिक अंकगणक

हिंदी भाषा में नकारात्मक ध्रुवीय पद का उपयोग सामयिक अंकगणक के साथ स्वतंत्र रूप से किया जाता है ताकि बयान/कथन में उन पर जोर दिया जा सके।

उदाहरणः

(12) जल्द ही शुरू होगी डी-सीलिंगः नरेंद्र चावला (दैनिक जागरण, 9 सितंबर, 2020; पृष्ठ 16)

संदर्भः अवैध निर्माण के मामले में आवासीय क्षेत्र की संपति की डी-सीलिंग।

अवलोकनः दिए गए शीर्षक में, समयिक पद 'जल्द' पर जोर देने के लिए नकारात्मक ध्रुवीय पद 'ही' का उपयोग किया गया है।

(13) 24 घन्टे में ही बढ़ गए 100 कन्टेन्मेंट जोन (दैनिक जागरण; 7 सितंबर, 2020; पृष्ठ 9)

संदर्भः कोविड-19 मामलों में वृद्धि।

अवलोकनः दिए गए शीर्षक में व्यंग्य पर जोर देने के लिए सामयिक अंकगणक '24' के साथ नकारात्मक ध्रुवीय पद 'ही' किया गया है। शीर्षक का तात्पर्य सरकार द्वारा किए गए झूठे दावों से है कि भारत में कोविड-19 के मामले कम हो रहे हैं और स्थिति दिन-ब-दिन बेहतर होती जा रही है।

5 शोध परिणाम

वर्तमान अध्ययन के अनुसार, यह देखा गया है कि हिंदी भाषा में नकारात्मक ध्रुवीय पद (एनपीआई) का स्वतंत्र रूप से उपयोग किया जाता है। एनपीआई का उपयोग बयान/कथन में की गई टिप्पणी पर जोर देने के लिए किया जाता है। व्यापक दायरे में, एनपीआई का उपयोग समाचारों के शीर्षकों के निहित अर्थ को समझने के लिए किया जाता है। समाचार पत्रों के शीर्षकों के संदर्भ में, एनपीआई का उपयोग निम्नानुसार किया जाता हैः

1. दृढ़तावाचक कण
2. खंड निषेध
3. परिमाणक
4. प्रश्नवाचक
5. सामयिक अंकगणक

आमतौर पर, नकारात्मक ध्रुवीय पद का उपयोग नकारात्मक वातावरण में समाचार शीर्षक में किया जाता है। पाठकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए समाचार शीर्षकों में सनसनी पैदा करने के लिए इनका उपयोग किया जाता है। समाचारों के निहित अर्थ को चित्रित करने के लिए नकारात्मक ध्रुवीय पद (एनपीआई) का उपयोग हिंदी समाचारों के शीर्षकों में किया जाता है।

6 निष्कर्ष

शीर्षक एक समाचार का सार है। शीर्षक एक अत्यधिक बहु-कार्यात्मक पाठ-प्रकार होता है। चूँकि इसे दर्शकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए बनाया गया है, इसलिए इसमें अस्पष्टता की उपस्थिति स्पष्ट और विशिष्ट है। की शीर्षक की शैली पर साहित्य व्यापक है और इसमें विभिन्न दृष्टिकोण शामिल हैं। विभिन्न भाषाई अवधारणाओं, संस्थाओं और प्रक्रियाओं को आकर्षक और पढ़ने योग्य बनाने के लिए शीर्षक में शामिल किया गया है। वर्तमान कार्य समाचार पत्र के शीर्षकों के निर्माण में नकारात्मक ध्रुवीय पद (एनपीआई) के

माध्यम से सनसनी पैदा करने वाले तत्वों का अध्ययन करने का एक छोटा सा प्रयास है। वर्तमान अध्ययन हिंदी समाचारों के शीर्षकों का निर्माण करने की एक स्पष्ट तस्वीर प्रस्तुत करता है। यह हिंदी में नकारात्मक ध्रुवीय पद का अर्थ और नकारात्मक ध्रुवीय पद और स्वतंत्र विकल्प तत्वों के रूप में उनके व्यवहार के कारणों को दिखाने का एक प्रयास है। वर्तमान कार्य बताता है कि हिंदी समाचार पत्रों के शीर्षकों में एनपीआई का उपयोग समाचारों में व्यंग्य के तत्व का समर्थन करता है और दर्शकों को समाचार के निहित अर्थ को समझने में मदद करता है।

संदर्भ

- एलन, एस. (2004). समाचार संस्कृति। मेडेनहेडः ओपन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- होयन्स, डब्ल्यू एंड क्रोटेउ, डी. (2002). मीडिया/सोसाइटीः उद्योग, छवियों, और दर्शक। लंदनःसेज।
- कुमार, राजेश। (2013). द सिंटेक्स ऑफ नेगेशन एंड द लाइसेंसिंग ऑफ नेगेटिव पोलारिटी आइटम्स इन हिंदी। टेलर और फ्रांसिस।
- लाहिड़ी, यू. (1998). फोकस ऐंड एनपीआई इन हिंदी. प्राकृतिक भाषा शब्दार्थ, 1998, वॉल्यूम 6, नंबर 1 (1998), पृ 57-123. स्प्रिंगर। MhvksvkbZ: https://www.jstor.org/stable/23748257
- वशिष्ठ, श्रवण । (2003), वर्क ऑर्डर, नेगेटिव और नेगेटिव पोलारिटी इन हिंदी. रिसर्च ऑन लैंग्वेज ऐंड कंप्युटेशन
- 2: 127-146, 20041 2003 क्लूवर अकादमिक प्रकाशक, नीदरलैंड.
- https://jionews.com

डिजिटल पत्रकारिता में हिंदी का योगदान

नितेश उपाध्याय

शोध सार

21वीं शताब्दी सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। आधुनिक संचार तकनीकी का मूल आधार इन्टरनेट ही है। कलमविहीन पत्रकारिता के इस युग में डिजिटल पत्रकारिता ने एक नए युग का सूत्रपात किया है। डिजिटल पत्रकारिता को हम इन्टरनेट पत्रकारिता, ऑनलाइन पत्रकारिता, साइबर पत्रकारिता के नाम के जानते हैं। यह कम्प्यूटर और इंटरनेट द्वारा संचालित एक ऐसी पत्रकारिता है, जिसकी पहुँच किसी एक पाठक, एक गाँव, एक प्रखण्ड, एक प्रदेश या एक देश तक नहीं, अपितु समूचे विश्व तक है। तकनीकी विकास के इस दौर में जनसंचार माध्यमों यथा हिन्दी पत्रकारिता के रूख में तेजी से परिवर्तन देखने को मिला है। तकनीकी के इस विस्तार से हिन्दी पत्रकारिता के विस्तार में भी मदद मिली है। हिन्दी समाचार चौनल, समाचार पत्रों के साथ-साथ हिन्दी में समाचार वेबसाइट के कारण हिन्दी पत्रकारिता का दायरा विस्तृत हुआ है। हिन्दी पत्रकारिता को व्यवसायिक रंग में ढाला जा चुका है। वहीं कई समानान्तर माध्यम भी कार्य कर रहे हैं, जो व्यावसायिकता से अभी परे हैं। यह समय के साथ क्रमिक रूप में विकसित हो रहा है। तकनीकी के कारण सूचनाओं पर लगने वाली बंदिशे कम हुई हैं एवं लोगों तक अबाध सूचना का मार्ग प्रशस्त हुआ है। इन सबके चलते हिन्दी पत्रकारिता ने एक नये दौर में प्रवेश किया है।

बीज शब्दः डिजिटल, पत्रकारिता, पत्रकारिता और प्रौद्योगिकी, हिन्दी पत्रकारिता, इंटरनेट आदि।

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि लोकतंत्र में मीडिया को चौथा स्तम्भ कहा जाता है। इस संदर्भ में देखा जाए तो बीते कुछ दशकों में ऑनलाइन मीडिया पाँचवां स्तम्भ बनकर सामने आया है। एक जमाने में लोगों के पास दुनिया का हाल जानने के लिए अखबार और रेडियो हुआ करते थे। टी.वी. ने इस परिपाटी को बदला और खबरों में आवाज के साथ रंग भी भरे। लेकिन इंटरनेट ने यह तस्वीर पूरी तरह बदल दी। वस्तुतः इंटरनेट ने पत्रकारिता के क्षेत्र में एक नवीन क्रांति का सृजन किया, जिसे हम 'डिजिटल पत्रकारिता' अथवा वेब या ऑनलाइन पत्रकारिता के नाम से जानते हैं।

डिजिटल पत्रकारिता, पत्रकारिता का वह स्वरूप है, जिसमें तकनीकी माध्यमों का उपयोग करके समाचार और जानकारी को प्रस्तुत किया जाता है। वेबसाइट्स, सोशल मीडिया, ब्लॉग्स, वीडियो प्लेटफॉर्म इत्यादि विभिन्न माध्यम इसके उपादान हैं। डयूज एवं विट्शचगे के अनुसार- ''डिजिटल पत्रकारिता को डिजिटल वातावरण के लिए उत्पादित समाचार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''[1] इस सन्दर्भ में मारी विल ने लिखा है कि ''जब पत्रकार डिजिटल प्रकाशन के लिए ईमेल, लैपटॉप, टैबलेट, मोबाईल, डिजिटल वॉयस रिकॉर्डर, ब्लॉग और डिजिटल विडिओ रिकॉर्डर जैसे उपकरणों का प्रयोग करते हैं तो

इसे पारंपरिक पत्रकारिता से अलग डिजिटल पत्रकारिता माना जाता है।''[2] डिजिटल पत्रकारिता नये दौर की वह पत्रकारिता है जिसे संपादकीय, कंटेट प्रिंट अथवा प्रसारण माध्यमों से नहीं, अपितु इंटरनेट के माध्यम से प्रचारित किया जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो इंटरनेट पर हम किसी भी रूप में खबरों, लेखों, चर्चा-परिचर्चाओं, बहसों, फीचर, झलकियों, डायरियों के जरिये अपने समय की धड़कनों को महसूस करने और दर्ज करने का काम करते हैं। प्रिंट मीडिया से यह इस रूप में भी भिन्न है कि इसके पाठकों की संख्या को परिसीमित नहीं किया जा सकता है। इसकी उपलब्धता भी सर्वाधिक है। इसके लिए मात्र इंटरनेट और कम्प्यूटर, लैपटॉप या मोबाइल की जरूरत होती है। इंटरनेट ऑनलाइन मीडिया की सर्वव्यापकता को भी चरितार्थ करता है जिसमें खबरें दिन के चौबीसों घण्टे और हफ्ते के सातों दिन उपलब्ध रहती हैं। वेब पत्रकारिता की सबसे बड़ी खासियत है- उसका वेब यानी तरंगों पर आधारित होना। इसमें उपलब्ध किसी भी दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्र-पत्रिका को सुरक्षित रखने के लिए किसी आलमीरा या लाइब्रेरी की ज़रूरत नहीं होती है।

भारत में कम्प्यूटर साक्षरता की दर तेजी से बढ़ रही है। मिनिस्ट्री ऑफ इनफार्मेशन एण्ड ब्रॉडकास्टिंग के एक डाटा के अनुसार ''भारत में 1.2 बिलियन सेलफोन उपयोगकर्ता है, जिसमें से 600 मिलियन स्मार्ट फोन उपभोक्ता है।''[3] टाइम्स ऑफ इंडिया में छपे एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार-''2019 में भारत में 2.7 घंटे प्रति उपभोक्ता प्रति सेलफोन समय व्यतीत किया गया है। वहीं 2021 में यह आंकड़ा बढ़कर 4.7 घंटे प्रति उपभोक्ता प्रति सेलफोन हो गया है, जो कि पिछले वर्ष की तुलना में 37 प्रतिशत वृद्धि को दर्शाता है।''[4] इस वृद्धि का एक मुख्य कारण इंटरनेट पर सूचनाओं के वृहद् जाल का आसानी से सुलभ होना है। इंटरनेट पर पत्रकारिता के दो रूप हैं। पहला तो इंटरनेट का एक माध्यम या औजार के रूप में इस्तेमाल, यानी खबरों के सम्प्रेषण के लिए इंटरनेट का उपयोग। दूसरा रिपोर्टर अपनी खबर को एक जगह से दूसरी जगह तक ईमेल या अन्य माध्यमों के जरिये भेजने और समाचारों के संकलन, खबरों के सत्यापन और पुष्टिकरण में उपयोग करता है। रिसर्च या शोध का काम इंटरनेट ने बेहद आसान कर दिया है। टेलीविजन या अन्य समाचार माध्यमों में खबरों के बैकग्राउंड तैयार करने या किसी खबर की पृष्ठभूमि तत्काल जानने के लिए जहाँ पहले ढेर सारी अखबारी कतरनों की फाइलों को ढूँढना पड़ता था, वहीं आज चंद मिनटों में इंटरनेट विश्वव्यापी संजाल के भीतर से कोई भी बैकग्राउंडर या पृष्ठभूमि खोजी जा सकती है। एक समय था, जब टेलीप्रिंटर पर एक मिनट में 80 शब्द एक जगह से दूसरी जगह भेजे जा सकते थे, आज स्थिति यह है कि एक सेकेण्ड में 56 किलोबाइट यानी लगभग 70 हजार शब्द भेजे जा सकते हैं। वर्तमान समय में वैश्विक स्तर पर इंटरनेट पत्रकारिता का तीसरा दौर चल रहा है। पहला दौर 1982 से 1992 तक था, जबकि दूसरा दौर 1993 से 2001 तक। तीसरे दौर की इंटरनेट पत्रकारिता 2002 से अब तक की है। पहले चरण में इंटरनेट खुद प्रयोग के धरातल पर था, जो अमेरिका एवं कुछ यूरोपीय देशों तक सीमित था। सच्चे अर्थों में इंटरनेट पत्रकारिता का शुरुआत 1983 से 2002 के मध्य हुआ। इस दौर में तकनीक के स्तर पर भी इंटरनेट का जबरदस्त विकास हुआ। वेब ब्राउजर, ईमेल, एचटीएमल ने इंटरनेट पर सूचनाओं के भण्डारण में अहम् भूमिका निभाई। तीसरे युग में मोबाइल के बहुतायत प्रचार-प्रसार एवं उपयोग ने भंडारित डाटा को उंगलियों के एक स्पर्श तक सीमित कर दिया। वस्तुतः यह एक ऐसा चरण है जिसमें डिजिटल पत्रकारिता का बहुआयामी विकास हुआ जिसके सकरात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव दिखते हैं।

समाचार-पत्रों और टेलीविजन की तुलना में इंटरनेट पत्रकारिता की उम्र बहुत कम है, लेकिन उसका विस्तार बहुत तेजी से हुआ है। डिजिटल पत्रकारिता के तहत पहले पहल अंग्रेजी अखबारों का ही प्रचार-प्रसार हुआ, जैसा कि भारत में उन्नीसवीं शताब्दी में पत्रकारिता के शुरूआती दौर में हुआ था। हिन्दी में नेट पत्रकारिता 'वेब दुनिया' के साथ शुरू हुई। यह इंदौर के नयी दुनिया समूह से शुरू हुआ। यह पोर्टल हिन्दी

का संपूर्ण पोर्टल है। चेन्नई का 'द हिन्दू' पहला ऐसा भारतीय अखबार था जिसने अपना इंटरनेट संस्करण वर्ष 1985 ई. में शुरू किया। इसके तीन साल के भीतर ही यानी वर्ष 1998 ई. तक लगभग 48 समाचार-पत्र ऑनलाइन हो चुके थे। इसके साथ ही हिन्दी के अखबारों ने भी इंटरनेट में अपनी उपस्थिति दर्ज करानी शुरू की। जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान, प्रभात खबर, नवभारत टाइम्स, दैनिक भास्कर, राष्ट्रीय सहारा व जनसता के वेब संस्करण धीरे-धीरे प्रकाशित किये जाने लगे। कई ऐसे अखबार प्रारंभ हुए जो प्रिंट रूप में न होकर सिर्फ इंटरनेट पर ही उपलब्ध हैं। 'प्रभासाक्षी' इस तरह के अखबार का एक उदाहरण है। हिन्दी वेब-जगत का एक अच्छा पहलू यह भी है कि इसमें कई साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। अनुभूति, अभिव्यक्ति, हिन्दी नेस्ट, सराय, गवेषणा, भावक, संवाद-पथ इत्यादि अनेक पत्रिकाएँ समाज में पत्रकारिता को परिचालित कर रही हैं। सरकार के तमाम मंत्रालय, विभाग, सार्वजनिक उपक्रमों ने भी अपने हिन्दी अनुभाग शुरू किये हैं। इस दिशा में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ एवं केन्द्रीय हिन्दी संस्थान-आगरा के द्वारा हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में अमूल्य योगदान दिया जा रहा है। एक रिपोर्ट के मुताबिक वर्ष 2006 ई. तक देश के लगभग सभी समाचार-पत्रों एवं टेलीविजन चैनलों के अपना इंटरनेट संस्करण भी हैं जिसके माध्यम से वे पाठकों को ऑनलाइन समाचार उपलब्ध करा रहे हैं। अनेक हिन्दी कवियों और लेखकों द्वारा अपने लेखन के माध्यम से भी हिन्दी पत्रकारिता को डिजिटल करने की कवायद की जाती रही है। मशहूर लेखक अनवर मसूद लिखते हैं कि-

"इस वक्त वहाँ कौन धुआँ देखने जाए,
अखबार में पढ़ लेंगे कहाँ आग लगी थी"[5]

वर्तमान समय में डिजिटल पत्रकारिता ने उक्त पंक्ति को कुछ इस तरह बदला है-

"अखबारों को पढ़ने की ज़हमत कौन उठाये
यूट्यूब पर देख लेंगे कहाँ आग लगी थी।"

पहले पहल 1997 ई. में कोलम्बिया जर्नल रिव्यू में एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसमें ऑनलाइन न्यूज के भविष्य की जाँच की गई थी। इस लेख में लेखक ने यह बताया कि "डिजिटल प्रौद्योगिकी के साथ पत्रकारिता का विलय कैसे परस्पर संवादात्मक और अनुकूल हो सकता है और लेख, चित्र, ध्वनि, गत्यात्मक छवि के नए संयोजनों को शामिल कर सकता है और साथ ही नए समुदायों का निर्माण भी कर सकता है।"[6] डिजिटल पत्रकारिता के क्षेत्र में हिन्दी भाषा के समक्ष सर्वप्रमुख समस्या हिन्दी फॉण्ट एवं सॉफ्टवेयर की है। पहले पहले हिन्दी के फॉण्ट की अनुलब्धता थी। परन्तु क्रमिक विकास से इसका मार्ग कुछ तरह प्रशस्त हुआ कि अब फॉण्ट के विविधता की समस्या है। अलग-अलग शैक्षिक संस्थानों, समाचार पत्रों द्वारा अलग-अलग फॉण्ट का इस्तेमाल किया जाता है, जिसके कारण एकरूपता दिखाई नहीं देती है। यूनिकोड, कृतिदेव, अपराजित, एरियल कुछ प्रसिद्ध हिन्दी फॉण्ट है। इसके अतिरिक्त एक दूसरी समस्या इंटरनेट पर पत्र-पत्रिकाओं के संरक्षण एवं संकलन का काम वर्तमान में बहुत पिछड़ा हुआ है। कई पुरानी पत्रिकाओं को देखने के लिए शोधार्थियों को जगह-जगह भटकना पड़ता है, जिस कारण शोध का कार्य सुचारू रूप से नहीं हो पाता है। वर्तमान में हिन्दी से संबद्ध सभी पत्र-पत्रिकाओं के लिए एक ऐसे ऑनलाइन आर्काइव्स की आवश्यकता है, जहाँ से सभी माध्यमों द्वारा सूचना प्राप्त की जा सके।

निष्कर्षत

हम कह सकते हैं कि डिजिटल पत्रकारिता के क्षेत्र में हिन्दी भाषा का भविष्य उज्ज्वल है। आज हिन्दी पत्रकारिता का लक्ष्य खबरों को एकत्र करना, उन्हें छापना और पाठकों तक प्रसारित करना ही नहीं

है, बल्कि यह लोक-शिक्षण एवं लोक-जागृति का भी सशक्त माध्यम है। पत्रकारिता का उद्देश्य अतीत के गर्भ में छिपे हुए रहस्यों को अनावृत करके वर्तमान की हर साँस व धड़कन का इतिहास और भूगोल जनता के सामने प्रस्तुत करना है। वह अतीत की संरक्षिका, वर्तमान की विश्लेषिका ही नहीं है, अपितु भविष्य की नियामक-नियंता भी है। इस रूप में डिजिटल पत्रकारिता ने एक महती भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वहन किया है। वर्तमान समय में मेरा यह मानना है कि यदि आपका लक्ष्य दुनिया को बदलना है तो पत्रकारिता इसके लिए एक स्थायी मशीन है और इंटरनेट उस मशीन की कुंजी।

संदर्भ-सूची

1. मार्क डयूज एवं तमरा विट्शचगे, बियोंड जर्नलिज़म : थ्योराइजिंग द ट्रांसफॉरमेशन ऑफ जर्नलिज़म, जर्नलिज़म, जि. 19, अंक 2, 2018, पृ. 165
2. विल मारी, ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ डिसराटिव जर्नलिज़म टेकनोलॉजीः 1960-1990, न्यू राउटलेज पब्लिशर्स, न्यूयॉर्क, 2019
3. Livemint.com, 16 Nov 2012, 8:33pm IST
4. M.economics.com, 18 Jan2022, 12:31 pm IST
5. अनवर मसूद, एक दरीचा एक चिराग, दोस्त पब्लिकेशन, 2008, पृ. 44
6. जॉन वी. पावलिक, द फ्यूचर ऑफ ऑनलाइन जर्नलिज़म, कोलम्बिया जर्नलिज़म रिव्यू, जि. 36, 1997, पृ. 30-31

सत्यजित रे के सिनेमा में मानवता व सत्य की तलाश

शालू

शोध सार

वैश्विक दृष्टि से हिंदी सिनेमा का प्रचार-प्रसार भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अहम भूमिका निभा रहा हैं। जिस तरह लेखक के पास साहित्य लिखने के लिए शब्द होते हैं, उसी तरह एक फिल्म निर्माता के पास छवि और ध्वनि होती है, जिसे वह सिनेमा की भाषा में प्रयोग करके समाज के समक्ष अनछुए पहुलओं को दृष्टिगोचर करता है।

बीज शब्द- अस्मिता, मनोरंजन, सशक्तिकरण, कौतूहलता, मानदंड, अनभ्यस्त, जीवकोपार्जन, आत्मनिर्भर, समस्याएँ, प्रोत्साहित

शोध आलेख

सिनेमा कला, तकनीक व भाषा का वह संगम है जिसमें मानव के विभिन्न अनुभवों को पूर्ण संवेदना के साथ चलचित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। समाज में सिनेमा को केवल मनोरंजन की दृष्टि से ही देखा जाता है। लेकिन सिनेमा मात्र एक मनोरंजन का साधन नहीं है, इसमें दुनिया को नया आकार देने व सत्य की तलाश तक पहुँचने का सामर्थ्य होता है। आधुनिक युग में सिनेमा का प्रयोग द्वारा मनुष्य दूसरों की संस्कृति, रीति-रिवाज और भाषा को विशेषता जानने का प्रयास करता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि यह समाज की सत्य घटनाओं को दृश्य रूप में प्रभावशाली ढंग से दिखा सकता है। जिस प्रकार साहित्यकार अदृश्य, अमूर्त व कल्पित बिंबों का सृजन करता है। उसी प्रकार एक फिल्म निर्माता समाज में घटित सच्चाइयों व विसंगतियों को कलात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत करता है।

वैश्विक दृष्टि से भारतीय सिनेमा ने भारतीय व पश्चिमी समाज के लोगों के अंतर्मन में महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला है। सिनेमा समाज में सांस्कृतिक मानदंडों को आकार देने, फैशन के रुझानों को प्रभावित करने और सामाजिक मुद्दों को संबोधित करने में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। इसमें बदलाव को प्रेरित करने की शक्ति होती हैं। वस्तुतः इस दृष्टि से सत्यजित रे का सिनेमा मानवता व सत्य की अनूठी छाप प्रस्तुत करता है। भले ही, सिनेमा जगत में सत्यजित रे की फिल्मों को बने हुए दशक बीत चुके हों, लेकिन इनकी फिल्में दर्शकों के मध्य आज भी प्रासंगिक हैं। मूलतः इनकी फिल्में समय की कसौटी पर खरी उतरकर दर्शकों के दिलों में अपनी विशिष्ट पहचान बनाती हैं।

सत्यजित रे

एक सुख्यात फिल्म निर्माता के रूप में सत्यजित रे ने अपने जीवनकाल के दौरान 36 फिल्मों का निर्देशन कार्य किया। जिनमें अधिकांश फीचर, डाक्यूमेंट्री और लघु कथाओं पर आधारित हैं। इनमें अपु त्रयी (पाथेर पांचाली, अपराजितो और अपुर संसार), 'जलसाघर', 'पोस्टमास्टर', 'चारुलता', 'अरण्येर दिन रात्रि', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'सद्‌गति' और 'पिकूर डायरी' आदि सम्मिलित हैं। उनके सिनेमा में समाज की विविध प्रकार की मनोदशा, विभिन्न तकनीक और शैलियों का वर्णन मिलने के साथ-साथ हास्य-व्यंग्य, फैंटेसी और त्रासदी का वर्णन मिलता है। यही कारण है कि मानवीय चरित्रों को गहराई से परखने की असाधारण क्षमता रखने वाले सत्यजित रे का सिनेमा जगत में स्थान अनभ्यस्त है।

पाथेर पांचाली, अपराजितो एवं अपुर संसार इन तीन फिल्मों के विश्लेषण द्वारा सत्यजित रे के सिनेमा शिल्प को ठीक से समझा जा सकता है। उन्होंने मानवीय संबंधों, सामाजिक मुद्दों और दैनिक जनजीवन के संघर्षों पर आधारित विषयों को केंद्र में रखकर फिल्मों का निर्माण कार्य किया। अधिकांशतः इनकी फिल्में निर्धनता, असमानता और पितृसत्ता जैसे सार्वभौमिक विषय पर केंद्रित हैं तथा सामान्य जीवन जीने के कारण इनकी फिल्मों के पात्र यथार्थवादी हैं। फिल्मों के माध्यम से इनके पात्र दर्शकों को जीवन में निहित विसंगतियों, भावनाओं, विचारों एवं अभिलाषाओं के साथ सहानुभूति का अनुभव करवाते हैं। मूलतः इनकी फिल्मों के किरदार मनुष्य के अंतर्मन में भावनाओं को जगाने की क्षमता रखते हैं। इसका उत्कृष्ट उदाहरण 'अपु त्रयी', 'चारुलता' और 'पाथेर पांचाली' जैसी फिल्मे हैं। 'पाथेर पांचाली' फिल्म करते हुए इन्हें अनेक आर्थिक कठिनाइयों और संघर्षों का सामना करना पड़ा था। इस सबके बावजूद फिल्म 1955 ई. में बनकर तैयार हुई। इससे पहले पश्चिम का सिनेमा जगत भारतीय सिनेमा से बिल्कुल अनजान था। पाथेर पांचाली फिल्म का निर्माण कर सत्यजित रे जैसे भारतीय सिनेमा की तस्वीर ही बदल डाली है और उन्हें सिनेमा जगत में आदर व सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा। इतना ही नहीं, इस फिल्म को कान फिल्म उत्सव में सर्वश्रेष्ठ मानव डॉक्यूमेंट्री सहित विदेशों में अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए।

'पाथेर पांचाली' अपुकी नाम के लड़के की कहानी है। जो बंगाल के एक गाँव में अपने परिवार के साथ रहता है। उसके पिता हरिहर के विनम्र स्वभाव का लाभ गाँव वाले अधिक उठाते हैं। जिसके परिणामस्वरूप उसके पारिवारिक सदस्य खाने के लिए आपराधिक चोरी करने लगते हैं। फिल्म में उसकी बहन दुर्गा पड़ोस के बगीचे से अमरूद चुरा कर खाती है। उसकी माँ सर्बजया मजदूरी न मिलने पर सुचारू रूप से जीविकोपार्जन नहीं कर पाने से अत्यंत दुखी होती है।

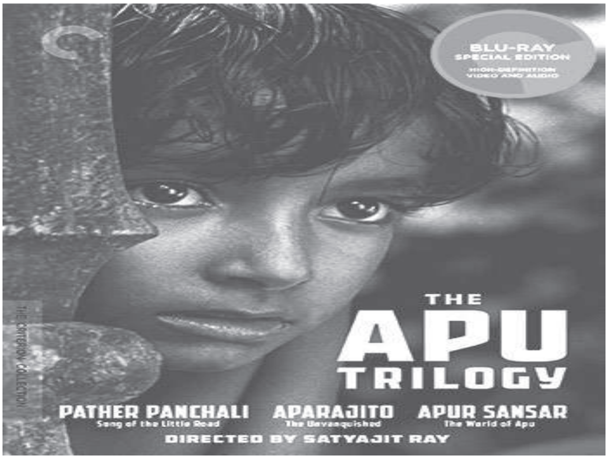

अपु त्रयी (अपु ट्रिलजी)

परिवार की दयनीय स्थितियों में भी अपु और उसकी बहन दुर्गा अपने जीवन में प्रसन्न रहने का कोई न कोई मार्ग ढूँढ़ ही लेते हैं। जैसे-एक पेड़ के नीचे चुपचाप बैठना, गाँव से गुजरने वाले कैंडी वाले के पीछे दौड़ना तथा बायोस्कोप में चित्र देखना आदि। सत्यजित रे ने फिल्म में ग्रामीण जीवन की आंचलिकता का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। मनुष्य का बचपन छोटे-छोटे स्मृतियों को समेटता रहता है। इन्हीं स्मृतियों को सत्यजित रे ने अपनी फिल्म में अपु और दुर्गा किरदारों के माध्यम से वर्णित किया है। एक दिन दोनों संध्या समय ट्रेन की एक झलक पाने के लिए घर से भाग जाते हैं। वापिस लौटने पर देखते हैं कि उसकी बूढ़ी चाची की मृत्यु हो गयी है। अपु और दुर्गा दोनों के बाल सुलभ अंतर्मन में अनेक प्रश्न घूमते हैं। पिता हरिहर पारिवारिक जीवकोपार्जन के लिए शहर जाने का फैसला करता है तथा लंबे समय तक न लौटने के कारण परिवार का सारा बोझ सर्बजया के ऊपर आ जाता है।

पाथेर पांचाली एक मानवतावादी फिल्म है। जिसमें स्त्री के अवसादग्रस्त व व्यथित क्षणों को दर्शाया गया है। जीवन के दुखों को चित्रित करने के लिए नाटकीय दृश्यों का सहारा लेने के बजाय, फिल्म उन्हें सीधे, मानवीय संवेदनाओं के धरातल पर फिल्म चेहरे और मानवीय भावों से दिखाने का सफल प्रयत्न करती है। मानवीय संवेदनाओं के धरातल पर फिल्म दर्शकों भावनात्मक संबंध स्थापित करती है, जिसके कारण पात्रों का दुख दर्शकों से को अपना दुख जान पड़ता है। सत्यजित रे ने गंभीर व उदासीन दृश्यों को भी दर्शकों के अंतर्मन में उत्साह व कौतूहलता के साथ भरने का सफल कलात्मक प्रयास किया है। इस फिल्म में स्त्री व बाल मनोविज्ञान और निर्धनता के साथ-साथ पारिवारिक संघर्ष जैसे गंभीर विषयों को कलात्मकता के साथ उजागर किया गया है।

सत्यजित रे की फिल्मों की यह विशेषता रही है कि इन्होंने अपने स्त्री पात्रों को संघर्ष के बोझ से से दबाकर या प्रदर्शन की वस्तु के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है, बल्कि फिल्मों के माध्यम से समाज में स्त्रियों की विसंगतियों व परंपराओं को तोड़ने का अतुलनीय कार्य भी किया हैं। उदाहरण के रूप में वर्ष 1964 में फिल्म 'चारुलता' जो रबींद्रनाथ टैगोर के उपन्यास 'नास्तनिरह (द ब्रोकन नेस्ट)' से संबंधित है। इस पटकथा में चारु बंगाल की उन स्त्रियों का प्रतीक है जो पति के काम में व्यस्त होने के कारण अजनबी और एकाकीपन भरा जीवन जीने को मजबूर हो जाती हैं। परंतु आधुनिक युग के पुरोधा सत्यजित रे ने अपनी अद्भुत कला का परिचय दिया है। उन्होंने सामाजिक जीवन में अकेलेपन की शिकार स्त्रियों की दमित इच्छाओं को

'चारुलता' फिल्म के माध्यम से प्रस्तुत किया। वैवाहिक जीवन में चारु का अपने पति से असंतोष तथा पति के चचेरे भाई अमल के प्रति आकर्षण इत्यादि प्रसंग स्त्री के अंतर्मन में दुर्लभ मानवीय भावनाओं को उत्पन्न करते हैं। पटकथा के अंत तक आते-आते चारु न केवल अपनी इच्छाओं और अकेलेपन का समाधान करती है, बल्कि समाज के समक्ष अपनी अस्मिता व अस्तित्व के लिए आवाज भी उठाती है।

वर्तमान में स्त्रियाँ गृहिणी बनकर ज़िम्मेदारियों को उठाने तक सीमित नहीं रहना चाहतीं बल्कि घर से बाहर निकलकर विभिन्न कार्यों में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करके परिवार की आर्थिक आवश्यकओं की पूर्ति भी करना चाहती हैं। वर्ष 1963 में प्रकाशित 'महानगर (द बिंग सिटी)' फिल्म में मध्यवर्गीय भारतीय परिवार की दीन-हीन दशा को प्रस्तुत करने के साथ-साथ स्त्री के गृहिणी और कामकाजी दोनों स्वरूप का उल्लेख किया गया है। सत्यजित रे ने इस पटकथा की मुख्य स्त्री पात्र आरती के माध्यम से स्त्रियों के आत्मनिर्भर, सशक्त रूप को उजागर करके स्त्री सशक्तीकरण के सूक्ष्म और अनूठे ढंग को वर्णित किया है। क्योंकि आधुनिक युग में स्त्रियाँ अपने पति के समकक्ष विभिन्न कार्य करके सभी उत्तरदायित्व की पूर्ति कर रही हैं।

फिल्म 'महानगर' की सशक्त स्त्री आरती

सत्यजित रे की फिल्में समाज के लोगों को आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। इनकी फिल्मों में जहाँ एक ओर स्त्री सशक्तीकरण, आत्मनिर्भर और जागरूकता जैसे विषय केंद्र में है, तो वहीं दूसरी ओर मानव के आंतरिक भावों, विचारों व संवेदनाओं पर आधारित फिल्मों का निर्माण भी मिलता है। इनकी फिल्म 'टू' में मध्य व उच्चवर्गीय संपन्न परिवार के बच्चों के मनोभाव पर आधारित है। इस पटकथा का उद्देश्य आर्थिक स्तर पर भिन्नता के कारण बाल मन की भावना मन में व्याप्त प्रतिद्वंद्विता की भावना पर केंद्रित है। जो खेल-खिलौनों के साथ खेलते हुए एक-दूसरे से आगे निकलने की कोशिश से स्पष्टतः झलकती है। प्रायः भौतिक संपत्ति से समृद्ध बच्चों के पास अनगित मनोरंजन के साधन होने के बावजूद भी वे मानसिक तनाव से घिरे रहते हैं। दूसरी ओर साधारण परिवार के बच्चों के पास कम संसाधन होने के बावजूद भी वे प्रसन्न व संतुष्ट रहते हैं। सत्यजित रे ने इस पटकथा में प्रतीकवाद का उत्कृष्ट प्रयोग करके समाज के समृद्ध परिवार पर तीखा व्यंग्य किया है। साथ ही दर्शकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है कि संपन्न परिवार के बच्चों के पास तमाम सुविधा होने पर भी पारिवारिक सदस्यों द्वारा आत्मिक प्रेम न मिलने पर वे जंजीरों में जकड़े रहते हैं। दूसरी ओर निर्धन परिवार के बच्चों की मानसिकता है कि समाज का उच्च्व वर्ग सदैव निम्नवर्गीय लोगों का शोषण करता है। लेकिन इस अभावपूर्ण जीवन में भी वे सदैव प्रसन्न रहते हैं।

उच्चवर्गीय

मध्यवर्गीय

सत्यजीत रे की फिल्में आधुनिक मध्यवर्गीय समाज की विडंबना पर तीखा कटाक्ष करती हैं। ये दर्शाती हैं कि 'जीवन का वास्तविक आनंद अपार पूँजी इकट्ठा कर लेने से प्राप्त नहीं होता है अपितु उन्मुक्त व स्वतंत्र जीवन जीने से मिलता है।' एमीगोस डी इंडिया की संस्थापक क्लोडिया वेगा ठीक ही कहती हैं, ''लोगों के लिए हिंदी फिल्में कुछ पलों की राहत लेकर आती हैं। हम कल्पना करते हैं कि हमारे लोग भी हिंदी फिल्मों में दिखाए जाने वाले परिवारों की तरह हँसते-खेलते फलें-फूलें। फिल्में आशावान बनाए रखती हैं।''[1]

सत्यजित रे का सिनेमा किरदारों व कहानियों के लिए ही नहीं अपितु अपने निराले दृश्यांकन सौंदर्य की रागात्मक अभिव्यक्ति करने के लिए प्रसिद्ध है। जो सूक्ष्म मनोभावों के साथ-साथ प्रासंगिक सामाजिक समस्याओं का दृश्य जगत दर्शकों के समक्ष लाकर खड़ा कर देते हैं। दर्शक स्वयं उन क्षणों को जीने लगता है। वॉयस ऑफ अमेरिका मुखिया जगदीश सरीन के कथनानुसार ''आज की तारीख में भारत के बढ़ते वर्चस्व और हिंदी फिल्मों के प्रति दीवानगी ने दुनियाभर में हिंदी को तेजी से विस्तृत करने का अवसर दिया है। भारत और अमेरिका के मधुर होते रिश्ते भी अमेरिकी लोगों को हिंदी सीखने पर विवश कर रहे हैं। अमेरिका में बॉलीवुड की फिल्मों को लेकर काफी उत्साह देखा जाता है।''[2]

संवाद किसी भी फिल्म को लोकप्रिय व यादगार बनाने में अहम भूमिका निभाते हैं। सत्यजित रे, की फिल्मों की संवाद शैली इतनी अकृत्रिम व मर्मस्पर्शी है कि दर्शकों के साथ कथ्य से सहज ही भावनात्मक संबंध भी स्थापित हो जाता है। वास्तव में, किसी फिल्म के संवाद ही उसके कथानक को जीवंत बनाकर उस फिल्म को सफल, लोकप्रिय और यादगार बनाते हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि सत्यजित रे ने मानव के विविध आयामों को प्रकाश में लाकर सामाजिक मनुष्य को जागरूक करने का सफल कार्य अपनी फिल्मों के माध्यम से किया है। इन्होंने न केवल बंगाल के ग्रामीण अंचल के सौंदर्य बोध को अंकित किया है, बल्कि शहरी जीवन के व्यस्त परिवेश को भी चित्रित किया है। स्त्री सशक्तिकरण के सूक्ष्मतम बिंदुओं के साथ ही बाल सुलभ कोमल-अमल मनोभाव व अनुभूतियों को निराले ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान की है। लुभावने दृश्यों और सम्मोहक कहानी के संयोजन से मानव मन को प्रभावित करने से साथ-साथ उसे जागरूक भी करते हैं। इनके सिनेमा की अन्यतम विषेशता है कि इनकी फिल्मों के पात्र सदैव कुछ नया तलाशने की उत्सुकता को प्रकट करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Claudia Vega, Founder of 'Amigos de India, (24 dec 2012), 'Bollywood strikes up romance with Colombia', The Economic Times, New Delhi.
2. Jagdish Sarin, Chief of Voice of America, Hindi Service, (14 sep 2006), 'Bollywood helps spread Hindi in US', Voice of America

ग्लोबल गाँव में बाजार, मीडिया और साहित्य

डॉ. रहीम मियाँ

आज भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण दोनों ही ग्लोबलाइजेशन, ग्लोबीकरण के लिए सर्वस्वीकृत शब्द हैं। यह भूमंडलीकरण हमारी इच्छा पर निर्भर न होकर हम थोपा जा रहा है, जिसपर मानवता के कल्याण के नाम पर कुछ बड़े देशों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का स्वार्थ निहित है। भूमंडलीकरण को ग्लोबल विलेज की अवधारणा के रूप में समझाने का प्रयास किया गया था कि इससे पूरा विश्व एक गाँव बन जायेगा। हम सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दृष्टि से एक समान होकर विश्व में पर अपनी पहचान स्थापित करने में कामयाब होंगे, जबकि असलियत यह है कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने जिस विश्व मैत्री का सपना दिखाया, वह मात्र कोरी कल्पना, भुलावा और छलावा ही बनकर रह गया। यू. एन. डी. पी. की रिपोर्ट कहती है कि ''भूमंडलीकरण ने पूरे विश्व में अमीरों का अमीरीकरण और गरीबों का गरीबीकरण किया है। वर्ष 1998 में अमरीका के 26 प्रतिशत लोग इंटरनेट का प्रयोग कर रहे थे जबकि लैटिन अमरिका में यह केबल 0.8 प्रतिशत, सहारा अफ्रिका में 0.4 प्रतिशत तथा दक्षिण एशिया में मात्र 0.04 प्रतिशत लोग ही इसका प्रयोग कर पा रहे थे।'' 'ICT facts and figures 2017' के अनुसार अभी तक 104 देशों के 80 प्रतिशत युवा इंटरनेट का इस्तेमाल कर रहे हैं। विकसित देश में 15-24 साल के 94 प्रतिशत तो विकासशील देश में 67 प्रतिशत युवा इसका प्रयोग कर पा रहे है, जबकि कम विकसित देशों में यह आँकड़ा केवल 30 प्रतिशत ही है। अफ्रीकी देशों में 10 में से 9 युवा आज भी इंटरनेट का पूरा इस्तेमाल करने से वंचित हैं।'' यह असमानता सिद्ध करती है कि ग्लोबल विलेज की अवधारणा मात्र एक कल्पना है। यह एक ऐसी प्रक्रिया भर है जिसमें विकास एवं समरूपता के नाम पर विकासशील देशों में गरीबी और बेरोजगारी को बढ़ावा दिया जा रहा है, जिसका सरगना अमरीका है।

अतः वैश्वीकरण के बहाने दुनिया के अमीर देश भले ही अंतरराष्ट्रीयतावाद व ग्लोबल विलेज का एक लोकलुभावन स्वप्न विश्व के विकासशील देशों की विशाल आबादी को दिखा रहे हों लेकिन उसका असली मकसद इस बहाने इन देशों की भौतिक संपदा मानव संसाधन अर्थात विशालकाय श्रम शक्ति व बौद्धिक सम्पदा का दोहन कर अपने साम्राज्यवादी हितों व स्वार्थों को पूरा करना है चूँकि ये देश सस्ते श्रम व संसाधनों की बड़ी-बड़ी मंडिया या बाजार की जरूरतों को पूरा जो करते हैं।

बाजार

जीवनोपयोगी वस्तुओं के लेन-देन का स्थान बाजार कहलाता है। इस पारम्परिक बाजार में लेन-देन की प्रक्रिया मनुष्य के सामान्य गुणों, मानवीय मूल्यों को बगैर हानि पहुँचाए समपन्न होती है, लेकिन आज का बाजार पूँजीवादी साम्राज्यवाद के रूप में दुनिया के सामने आया है। इस बाजार में व्यापार के लिए खुली

प्रतियोगिता होती है। आज का बाजार 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की कहावत को शत-प्रतिशत चरितार्थ करता है। किसी एक निश्चित स्थान पर न होकर अन्तरराष्ट्रीय विशुद्ध मुनाफे के लिए निर्मय प्रतिद्वंदिता व गलाकाट प्रतियोगिता इसका असली चरित्र है। यहाँ मानवीय संबंध नैतिक मूल्य सब कुछ उत्पाद के रूप में बिकाऊ बना दिया गये हैं। राज्यों के सम्राज्यवाद का स्थान बाजारवादी व्यापारिक सम्राज्य ने ले लिया है। हमारा समाज भी बाजार द्वारा निर्मित एवं नियंत्रित हो रहा है, जहाँ हर एक व्यक्ति उपभोक्ता है। हंस के संपादक राजेन्द्र यादव का कहना हैः- **''बाजार सिर्फ खरीदने, बेचने की जगह न होकर संस्कृति, सम्राज्य, राष्ट्र बनाने, तोड़ने की विचारधारा और व्यवस्था भी है, जो व्यक्ति को मात्र उपभोक्ता में बदल कर रख देता है।''**

वैश्वीकरण का नारा बाजार को हासिल करने का नारा है। वैश्विकता का यह जोश और जिद सम्पूर्ण विश्व के पश्चिमीकरण की जिद है, जिसे यथार्थ बनाने में विश्व के कई देशों की संस्कृतियों, सभ्यताओं का नाश किया जा रहा है। आज का बाजार उपभोक्ता को संतुष्ट नहीं करता, बल्कि नई-नई कृत्रिम जरूरतें पैदा कर मानव मन को और ज्यादा बेसब्रीला बना असंतोष पैदा करता है। वह उत्पाद के अनुरुप लोगों की मनोवृत्ति को ढ़ालता है और उसे सहज पेश न कर उत्तेजक व आक्रामक रूप में पेश करता है। जैसा कि नंद भारद्वाज का कथन है- **''अब तो बाजार तय करता है कि आप अपने घर की सजावट किस तरह रखेंगे। आप किस काट की कपड़े पहनेंगे। क्या खायेंगे और अपनी सहज जीवन प्रक्रिया को छोड़कर किन आरोपित तौर-तरीकों को अपनाने के लिए बाध्य होंगे।''(संस्कृति, जनसंचार और बाजार, पृ. 146)**

वैश्वीकृत बाजार शोषणकारी है तथा गरीबी और बेरोजगारी को पैदा करता है। यह आर्थिक असमानता उत्पन्न कर सामाजिक लाभों की उपेक्षा करता है। इस बाजार में श्रमिक पूँजी का दास बन चुका है। इस बाजारवादी अर्थव्यवस्था का आधार घृणित उपभोक्तावाद है। उपभोक्तावाद का मंत्र है अधिक से अधिक उपभोग करो और उससे हमेशा असंतुष्ट रहो। इस बाजार का आदर्श बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ तय करती हैं। इस संबंध में ख्यात अर्थशास्त्री व भारत के भूतपूर्व प्रधान मंत्री **मनमोहन सिंह** का यह कथन काबिलेगौर है- **''एक अभूतपूर्व युग का उदय हो रहा है, जिसमें बाजार कभी बंद नहीं होते। चौबीस घंटे बाजार काम करते रहते हैं। ये रोमांचक क्षण हैं इतिहास के। मनोवैज्ञानिक जानते हैं कि जो कभी नहीं सोता है उसके शरीर को कभी विश्राम नहीं मिलता है। आखिरकार ऐसी स्थिति आ जाती है कि वह पागल हो जाता है। तो क्या हम एक ओर पागल बाजार की ओर बढ़ रहे हैं जो कभी नहीं सोता है। जो मुनाफा और अधिक मुनाफा कमाने की ओर बढ़ रहा है।'' (अक्षर पर्व पत्रिका)**

वैश्वीकरण से उपजी संस्कृति ने मूल्य संकट को जन्म दिया है। मनुष्य परम्परा और आधुनिकता के संक्रमण से जूझ रहा है। वह एक ओर परम्परा को पूरी तरह छोड़ने में असमर्थ है, वहीं नई संस्कृति के आकर्षण उसे प्रतिपल लुभाता है, जैसा कि **गिरिश मिश्रा** लिखते हैं- **''बाजार सुंदरता को सेक्स अपील से जोड़ता है, धर्म और अध्यात्म का व्यावसायीकरण करता है और प्रेम को प्रदर्शन की वस्तु मानता है।'' (Globalization and culture, पृ. 15)**

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों भारत के नये मध्य वर्ग को रिझाने के लिए विज्ञापन का सहारा लेती हैं। विज्ञापन हमारे अंदर उपभोक्तावाद को बढ़ावा दे रहा है, विज्ञापन मानव मन में नई-नई लालसाएँ पैदा करते हुए बाजार की शक्तियों के लिए लाभ कमाने का जरिया बन ऋणग्रस्तता से शुरू होकर दिवालिया होने तक की अंधी सुरंग में ले जाकर उसे मौत के घाट उतार देते हैं। यही नहीं उस वस्तु को पाने के लिए सहजता से ऋण भी मुहैया करा रही है। आज बाजार में सबकुछ बिकता है। बाजार ब्रांड की संस्कृति का धरोहर है। हम ब्रांड के पीछे भागने वाले हो गये है। खान-पान से लेकर पहनावे तक की चीजें प्रमुख ब्रांडों से भरे हुए है। बाजार जीवन के हर पहलू का व्यापार धड़ल्ले से कर रहा है। मानव जीवन का कोई भी पक्ष इससे अछूता

नहीं है। अमीत कुमार सिंह के शब्दों में कहें तो, **''भूमंडलीकृत भारत का समाज एक ऐसे उपभोक्तावादी समाज के रूप में विकसित हो रहा है, जहाँ बाजारवाद भारतीयों की नई जीवन-शैली बनकर उभरा है। भारत का मध्यवर्ग एक नई दुनिया में प्रवेश कर चुका है, जहाँ उपभोग का संबंध केवल उसकी आवश्यकता एवं संतुष्टि से नहीं रहा गया है। यह व्यक्ति के पहचान से भी संबंधित हो गया है।''** (**भूमंडलीकरण और भारतः परिदृश्य और विकल्प, पृ.** 95)

यह सच है कि बाजारवाद ने सांस्कृतिक दूरियों को कम किया है। भौगोलिक व आर्थिक प्रतिबंधों को तोड़ा है लेकिन उसने हर देश में एक ऐसी अपसंस्कृति को जन्मा है जहाँ नैतिक व अनैतिक के मध्य की रेखा लुप्त प्रायः हो चली है। एक तरफ स्त्री के आर्थिक सबलीकरण का ढोल पीटा जा रहा है वहीं दूसरी तरफ पूरी दुनिया में धड़ल्ले से स्त्रियों का व्यापार हो रहा है। जैसा कि नंद भारद्वाज का कथन है **''यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि बड़े शहरों के कार्निवॉल कल्चर की चकाचौंध और बाजारों की रंगीनियाँ तो हमें आकर्षित करती हैं, लेकिन उनके साये में पलते आर्थिक अपराध, बेईमानी, भ्रष्टाचार, कालाबजारी, लूट-खसोट, गलाकाट स्पर्धा, भेदभाव आदि पर एक मिनट के लिए भी नजर नहीं टिकती।''** (**संस्कृति, जनसंचार और बाजार, पृ.** 144)

मीडिया

भूमंडलीकरण की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं को सबसे अधिक मीडिया ने ही हवा, पानी और खाद दिया है। इंटरनेट से लेस मीडिया आज सौ फीसदी एक ताकतवर उद्योग के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है। लोकोपकार के अलावा व्यावसायिक ध्येय व पूँजीगत लाभ-प्राप्ति उसकी वरीयता है।

मुक्त बाजार व्यवस्था और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के दबदबे के कारण संचार माध्यमों की प्रकृति एवं उद्देश्य में भारी बदलाव आया। स्वायत्त और निष्पक्ष होने का दावा इतिहास को वस्तु बन गई है आज मीडिया पूरे भारत की सच्चाई को दिखाने के स्थान पर कुछ पूँजीपति घरानों के अनुसार और सरकार के अनुसार अपने खबरों को कवरेज देने लगी है। जैसा कि प्रांजलि बंधु कथन है, **''आधुनिक अखबार, अखबार नहीं, विभिन्न स्वार्थों के होल्डाल (तथाकथित टैबलॉयडीकरण) बनकर रह गए हैं। आजकल बड़ा और सफल दैनिक निकालने का सूत्र है- फैशन और डिजाइनिंग तथा खान-पान केन्द्रों पर बड़े-बड़े लेख छापना, फिल्मों अफवाहों, स्त्रियों की अर्द्धनग्न अलील तस्वीरों के साथ ताजा-तरीन, फिल्मों के सूचकांक और यात्रा स्थलों के बारे में छापना।''**

साहित्य

भूमंडलीकरण के रूप में जो नया उपनिवेशवाद आया है, इसने साहित्य को प्रभावित तो किया है। वहीं भूमंडलीकरण का विरोध भी साहित्य द्वारा ही किया जा रहा है। आज साहित्य में स्मृतिहीनता का कुप्रभाव भूमंडलीकरण के कारण गहरा और व्यापक हो रहा है। स्थानीयता, आदिम गंध, मिथक आदि के तो सीधे विरोध में खड़ा है भूमंडलीकरण। साहित्य में संवेदना महत्वपूर्ण है और भूमंडलीकरण सबसे पहले इसी की ही हत्या करता है ताकि आसानी से वह अपना व्यापारिक साम्राज्य खड़ा कर सके। पूँजीवादी सम्राज्यवाद क्या चर और क्या अचर सभी चीजों को माल में परिणत कर देता है और कला साहित्य व संस्कृति इसके अपवाद नहीं है।

भूमंडलीकरण के समय का साहित्य बाजार की जरूरतों को पूरा करने में संलग्न दिखता है। जहाँ प्रतिबद्ध लेखकों के सामने नए संकट खड़े हो रहे हैं। विज्ञापन, प्रलोभन और प्रचार शक्तियाँ लेखक पर दवाब डालती हैं, परिणामतः हिन्दी के लेखक फूहड़ व टेलिविजन धारावाहिकों के लिए काम करने पर मजबूर हैं।

भूमंडलीकरण के दुष्प्रभाव से साहित्यकार चिंतित हैं। कवि भूमंडलीकृत स्थितियों से विचलित होकर अपने बिम्बों, प्रतिकों एवं मिथकों के माध्यम से इसके दुष्प्रभाव का चित्रण कर रहे हैं। भगवत रावत की कविता 'दिल्ली की कुछ आबोहवा', कुँवर नारायण की 'बाज्श्रवा के बहाने', 'एक अन्य आरंभ', 'जादू नगरी' आदि में महानगरीकरण की टीस व्यक्त है तो उदय प्रकाश की 'घर की दूरी', 'बैरागी आया है गांव', 'दिल्ली' आदि कविता में अमीर गरीब के बीच की बढ़ती खाई का संवेदनात्मक चित्रण है। अनामिका, कात्यायनी, एकांत श्रीवास्तव, निलय उपाध्याय, कुमार अंबुज, मदन कश्यप आदि कवियों ने दलित एवं स्त्री चेतना के साथ ही खत्म होती मानवता की नियति पर कविताएँ की हैं।

कथा साहित्य में तो भूमंडलीकरण के प्रभाव का विश्लेषण सशक्त रूप में मिलता है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में अपसंस्कृति का जो प्रसार हो रहा है, उसे कहानी ने बहुत गहराई और विस्तार से विश्लेषित किया है। आर्थिक असमानता, अमीर और गरीब के बीच बढ़ती खाई, किसानों की आत्महत्याएँ, उपभोक्तावाद और बाजारवाद का खुला खेल, पूँजी के लिए अंधी दौड़ व धमा चौकड़ी आदि को कहानी के केंद्र में रखा है। इस युग में कमलेश्वर, उदय प्रकाश, मनोहर श्याम जोशी, मृणाल पांडे, रमेश उपाध्याय, संजीव, जय नंदन, शैवाल, विष्णु नागर, सुनिता जैन, मनीषा कुलश्रेष्ठ, नीलाक्षी सिंह आदि कहानिकारों ने भूमंडलीकरण की अपसंस्कृति का विरोध अपनी कहानियों एवं उपन्यासों के माध्यम से करते रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. भारद्वाज, नंद. संस्कृति जनसंचार और बाजार. सामयिक प्रकाशन, 2007.
2. मिश्रा, गिरिश. ग्लोबलाईजेशन एंड कल्चर, सम अस्पेक्ट, मैन्सट्रीम, 16.08.2003.
3. सिंह, अमीत कुमार. भूमंडलीकरण और भारतः परिदृश्य और विकल्प. सामयिक प्रकाशन, 2010.
4. चोमस्की, नोम. मध्यम वर्ग की अजीब दास्तान.
5. सिन्हा, सच्चिदानंद. भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ. वाणी प्रकाशन, 2003.
6. बंधु, प्रांजलि. भारतीय प्रसार माध्यम, विदेशी पूँजी की गुलामी का दौर.
7. हंस पत्रिका
8. अक्षर पर्व पत्रिका

दलितों के प्रति बढ़ती हिंसा और मीडिया की भूमिका

डॉ. हंसराज 'सुमन'

भारत में दलित समाज सदियों से सामाजिक और आर्थिक उत्पीड़न का शिकार रहा है। भले ही भारतीय संविधान में बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने दलितों को विशेष अधिकार दिए हैं, लेकिन वास्तविकता में सामाजिक समानता आज भी कोसों दूर है। जातीय भेदभाव और हिंसा दलित समाज के साथ जुड़े प्रमुख मुद्दे रहे हैं। पिछले कुछ दशकों में, दलितों के खिलाफ हिंसा के मामले तेजी से बढ़े हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि जातीय भेदभाव की जड़ें समाज में कितनी गहरी पैठ बनाए हुए हैं। इस दृष्टि से वर्तमान संदर्भ में मीडिया की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि यह समाज के सामने घटनाओं को प्रस्तुत करने, जनमत को प्रभावित करने और सामाजिक सुधार की दिशा में कार्य करने का एक शक्तिशाली माध्यम है। आलेख में दलितों के प्रति बढ़ती हिंसा और मीडिया की भूमिका पर गहराई से विश्लेषण किया गया है।

भारत में जाति-आधारित सामाजिक व्यवस्था का इतिहास बहुत प्राचीन है। यह व्यवस्था न केवल सामाजिक ढाँचे को विभाजित करती है बल्कि इसके तहत निचली जातियों विशेष रूप से दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता रहा है। चाहे वह छूआछूत की प्रथा हो या फिर सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार, दलित समाज को हमेशा से ही उत्पीड़न का सामना करना पड़ा है। भारत में समय-समय पर देश के विभिन्न हिस्सों से दलितों पर हिंसा के मामले सामने आते रहते हैं, जिनमें सामूहिक हत्याएँ, बलात्कार, सार्वजनिक अपमान, संपत्ति नष्ट करना और सामाजिक बहिष्कार जैसी घटनाएँ होना तो आम बात है। सामाजिक स्तर पर दलितों के साथ होने वाले इस तरह के अत्याचारों को कभी-कभी धार्मिक मान्यताओं और परंपराओं के तहत जायज ठहराने की कोशिश की जाती है। इसके साथ ही, राजनीतिक और आर्थिक हितों के लिए भी दलित समाज को दबाने का प्रयास होता रहा है। दलितों के खिलाफ होने वाली हिंसा केवल ग्रामीण इलाकों तक सीमित नहीं है; यह शहरी क्षेत्रों में भी व्याप्त है, जहाँ आधुनिकता और विकास के बावजूद जातीय असमानता अपने अलग-अलग रूपों में देखी जा सकती है।

हाल के वर्षों में दलितों के खिलाफ हिंसा में खतरनाक रूप से वृद्धि देखी गई है। नेशनल क्राइम रिकॉर्डस ब्यूरो (NCRB) के आँकड़ों के अनुसार, दलितों के खिलाफ हिंसा के मामले लगातार बढ़ रहे हैं। यह वृद्धि कुछ विशिष्ट कारणों से हो रही है-

1. राजनीतिक ध्रुवीकरणः जातीय आधार पर राजनीति के कारण समाज में तनाव और असमानता बढ़ी है। दलितों के खिलाफ हिंसा को कई बार सत्ताधारियों द्वारा राजनीतिक लाभ के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

2. सामाजिक असमानता और आर्थिक विषमताः दलितों के पास भूमि और अन्य संसाधनों की कमी अक्सर होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ संसाधनों का अधिक महत्व होता है, दलितों को उनके अधिकारों से वंचित किया जाता रहा है। जिससे विवाद और हिंसा की स्थिति उत्पन्न होती है।

3. धार्मिक और सांस्कृतिक भेदभाव सामाजिक और धार्मिक आधार पर दलितों को हमेशा हेय और त्याज्य समझा गया है। जातीय श्रेष्ठता का दावा करने वाले समूहों द्वारा दलितों के खिलाफ हिंसा को सांस्कृतिक या धार्मिक रूप से उचित ठहराया जाता है।

यह देखने में आया है कि पिछले कुछ वर्षों में दलित अत्याचारों की घटनाओं में इजाफा हुआ है। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार- ''वर्ष 2022 में अनुसूचित जातियों (एससी) के खिलाफ 97.7 प्रतिशत अत्याचार 13 राज्यों में हुए थे, जिनमें उत्तर प्रदेश, राजस्थान और मध्य प्रदेश में ऐसे मामलों की सबसे अधिक संख्या दर्ज की गई। उत्तर प्रदेश में 12287 मामले (23.78 प्रतिशत), राजस्थान में 8651 मामले (16.75 प्रतिशत) और मध्य प्रदेश में 7732 मामले (14.97 प्रतिशत) दर्ज किए गए। इसके अलावा अन्य राज्यों में अधिक मामले दर्ज किए गए हैं, जिनमें बिहार में 6799 मामले (13.16 प्रतिशत), उड़ीसा में 3576 मामले (6.93 प्रतिशत) और महाराष्ट्र में 2706 मामले (5.24 प्रतिशत) शामिल हैं। वर्ष 2022 में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के तहत दर्ज किए गए। कुल मामलों में से लगभग 81 प्रतिशत केवल इन छह राज्यों में दर्ज किए गए हैं। इस अधिनियम के तहत 2022 में अनुसूचित जातियों के खिलाफ कुल 51656 मामले दर्ज किए गए।'' रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया गया है कि ये मामले भारतीय दंड संहिता के तहत भी दर्ज किए गए हैं। रिपोर्ट में आगे बताया गया है कि अनुसूचित जनजाति (एसटी) के खिलाफ अत्याचार के अधिकांश मामले भी 13 राज्यों में हुए हैं।

अनुसूचित जनजाति (एसटी) से जुड़े 9735 मामलों में से मध्य प्रदेश में 2979 मामले (30.61 प्रतिशत), राजस्थान में 2498 मामले (25.66 प्रतिशत) और उड़ीसा में 773 मामले (7.94 प्रतिशत) दर्ज किए गए। अनुसूचित जनजाति (एसटी) से संबंधित अन्य मामलों में महाराष्ट्र में 691 मामले (7.10 प्रतिशत) और आंध्र प्रदेश में 499 मामले (5.13 प्रतिशत) शामिल हैं। इस रिपोर्ट में जाँच और चार्जशीट से संबंधित डेटा प्रस्तुत किया गया है। अनुसूचित जाति से संबंधित मामलों में 60.38 प्रतिशत मामलों में आरोपपत्र दाखिल किए गए, जबकि झूठे दावों या सबूतों की कमी के कारण 14.78 प्रतिशत मामलों में अंतिम रिपोर्ट दी गई। वर्ष 2022 के अंत तक 17166 मामलों की जाँच अभी भी लंबित है। अनुसूचित जनजाति से संबंधित 63.32 प्रतिशत मामलों में आरोपपत्र दाखिल किए गए, जबकि 14.71 प्रतिशत मामलों में अंतिम रिपोर्ट दी गई। वर्ष 2022 के अंत तक 17166 मामलों की जाँच अभी भी लंबित है। अनुसूचित जनजाति से संबंधित मामलों में 63.32 मामलों में आरोपपत्र दाखिल किए गए, जबकि 14.71 प्रतिशत मामलों में अंतिम रिपोर्ट दी गई। वर्ष 2022 के अंत तक 2702 मामलों की जाँच जारी थी। रिपोर्ट में एक प्रमुख चिंता अधिनियम के तहत दोषसिद्धि दर में गिरावट है। वर्ष 2022 में यह दर वर्ष 2020 के मुकाबले 39.2 प्रतिशत से घटकर 32.4 प्रतिशत हो गई। रिपोर्ट में इन मामलों के निपटारे के लिए विशेष अदालतों की अपर्याप्त संख्या पर भी चिंता व्यक्त की गई है। 14 राज्यों के 498 जिलों में से केवल 194 जिलों ने विशेष अदालतें स्थापित की हैं ताकि इन मामलों की तेजी से सुनवाई हो सके। रिपोर्ट में ऐसे विशिष्ट जिलों की पहचान की गई है जहाँ अत्याचार की घटनाएँ काफी अधिक हैं। चिंता का विषय यह है कि रिपोर्ट में केवल 10 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों ने ऐसे जिलों की घोषणा की है। उत्तर प्रदेश सहित अन्य राज्यों में, जहाँ अनुसूचित जाति से संबंधित मामलों की अधिक संख्या दर्ज की गई है, वहाँ कोई अत्याचार से प्रभावित जिला नहीं बताया गया है।''(1)

अनुसूचित जाति आयोग ने अनुसूचित जाति पर होने वाली घटनाओं के संदर्भ में 47,000 मिली शिकायतों को हाल ही में मीडिया के समक्ष सार्वजनिक किया है। उसने बताया है कि पिछले चार वर्षों में राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग (एनसीएससी) को 47,000 से अधिक शिकायतें प्राप्त हुई हैं, जिसमें दलितों के खिलाफ अत्याचार, भूमि और सरकारी नौकरियों से संबंधित मुख्य मुद्दे हैं। एक आरटीआई के जवाब में एनसीएससी द्वारा साझा की गई जानकारी के अनुसार- ''वर्ष 2020-21 में 11,917 शिकायतें प्राप्त हुईं,

वर्ष 2021-22 में 13,964 शिकायतें दर्ज की गईं, वर्ष 2022-23 में 12,402 और 2024 में अब तक 9,550 शिकायतें दर्ज की गईं।''(2)

आयोग के अध्यक्ष किशोर मकवाना का कहना है कि आयोग को मिलने वाली शिकायतों में अनुसूचित जाति समुदाय के खिलाफ अत्याचार से संबंधित शिकायतें होती हैं। आयोग के ही एक वरिष्ठ अधिकारी ने बताया है कि सबसे ज्यादा शिकायतें उत्तर प्रदेश राज्य से दर्ज की गई हैं। एक अन्य अधिकारी का कहना है कि आयोग को प्रतिदिन 200 से 300 शिकायतें मिलती हैं और उनमें से कई का समाधान कुछ दिनों में हो जाता है। इसी तरह से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों के खिलाफ अत्याचारों पर राष्ट्रीय हेल्पलाइन के आँकड़ों के अनुसार 6,02,177 काल प्राप्त हुईं। इनमें से कुल शिकायतों की संख्या 5,843 थीं, जिनमें 1,784 शिकायतों का समाधान किया जा चुका है। इसके बावजूद दलितों पर अत्याचार की घटनाएँ कम होने का नाम नहीं ले रही हैं। सरकार भी प्रति वर्ष दलितों पर अत्याचार संबंधी आँकड़े जारी कर देती है। दलितों पर अत्याचार कम कैसे हो इसको लेकर नीति नहीं बनाई जाती। दलितों पर होने वाले अत्याचारों और विकास के मुद्दों पर किसी भी राजनीतिक दल का कोई सरोकार नहीं है। आश्चर्य होता है कि देश में एक तरफ अमृत महोत्सव मनाया जा रहा है तो दूसरी ओर हाशिए पर पड़े इस समाज पर अत्याचार हो रहा है। आखिर यह सिलसिला कब बंद होगा?

देश में जब भी चुनाव होते हैं, सभी राजनीतिक पार्टियों के एजेंडे में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय की बेहतरी व उनके लिए सुविधाओं के वायदे भी अपने-अपने घोषणा पत्रों में करते हैं लेकिन चुनाव जीतने के बाद सरकार किसी भी पार्टी की हो एससी/एसटी की सुरक्षा संबंधी एजेंडे की अवहेलना कर दी जाती है। अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति पर अत्याचारों की रोकथाम करने के लिए किए गए सरकारी प्रयास केवल दिखावा साबित हुए हैं, अत्याचारों का सिलसिला जारी है। सांसदों द्वारा संसद में भी दलितों के प्रति बढ़ती हिंसा की रोकथाम के लिए सरकार से प्रश्न पूछे जाते हैं। सरकार भी गोलमोल जवाब दे कर पल्ला झाड़ लेती है।

जहाँ तक बात मीडिया की है, मीडिया किसी भी लोकतांत्रिक समाज का चौथा स्तंभ माना जाता है। यह समाज में सूचनाओं का प्रमुख स्रोत है। इसका जनता की सोच पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। दलितों के प्रति बढ़ती हिंसा के मुद्दे पर मीडिया की भूमिका बहुस्तरीय है। यद्यपि इस संदर्भ में मीडिया की भूमिका हमेशा संतोषजनक नहीं रही है।

1. **मीडिया कवरेज का अभावः** अक्सर देखा गया है कि दलितों के खिलाफ होने वाली हिंसक घटनाओं को राष्ट्रीय मुख्यधारा के मीडिया में पर्याप्त स्थान नहीं मिलता। ऐसी घटनाओं की रिपोर्टिंग शहरी इलाकों तक सीमित रह जाती है और राष्ट्रीय समाचार चैनल या प्रमुख समाचार पत्रों में इन घटनाओं को उतनी प्रमुखता नहीं दी जाती है जितनी दी जानी चाहिए। सोशल मीडिया के प्रभाव के कारण ग्रामीण क्षेत्रों से भी खबरें आने लगी हैं, लेकिन उस खबर को मीडिया संस्थान इतना महत्व नहीं देते जितना सवर्णों पर होने वाली घटनाओं को प्रमुखता से स्थान देते हैं।

2. **सेलेक्टिव रिपोर्टिंगः** अक्सर देखने में आया है कि मीडिया जातीय हिंसा की घटनाओं को नजरंदाज करता है, खासकर जब ये घटनाएँ राजनीतिक रूप से संवेदनशील होती हैं। कुछ मामलों में मीडिया दलित उत्पीड़न की घटनाओं को कुछ इस तरह से राजनीतिक रंग देकर प्रस्तुत करता है कि पीड़ित के बजाय अपराधी को अधिक समर्थन मिलता है। इसका उदाहरण है ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाली दलितों के खिलाफ सामूहिक हिंसा की घटनाएँ। जहाँ दबंग जातियों का प्रभुत्व होता है और मीडिया उनके पक्ष से अधिक सहानुभूति रखता है।

3. **सोशल मीडिया और नई पीढ़ी का प्रभावः** परंपरागत मीडिया के अलावा, सोशल मीडिया ने दलित

मुद्दों को उठाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दलित कार्यकर्ताओं और संगठनों ने सोशल मीडिया का प्रभावी ढंग से इस्तेमाल कर दलितों के खिलाफ होने वाले अत्याचारों को सामने लाने का प्रयास किया है। इस तरह के प्लेटफॉर्म्स ने आम जनता को अपनी आवाज उठाने और मुद्दों को व्यापक स्तर पर लाने का अवसर दिया है। सोशल मीडिया के कारण कई बार मुख्यधारा के परंपरागत मीडिया को भी दलित उत्पीड़न के मुद्दों को उठाने के लिए मजबूर होना पड़ा है।

हालाँकि, यह कहना भी उचित होगा कि सभी मीडिया आउटलेट्स ने दलितों के मुद्दों को नजरंदाज नहीं किया है। कुछ मीडिया संस्थानों और पत्रकारों ने दलितों के उत्पीड़न को उजागर इसे समाज में एक व्यापक बहस का हिस्सा बनाने का प्रयास भी किया है। पत्रकारों द्वारा की गई इस तरह की रिपोर्टिंग ने सरकार और न्याय प्रणाली पर दबाव डाला है, जिससे कुछ मामले मीडिया द्वारा उजागर किए गए और वे न्यायालयों के सामने आए जिससे उन्हें न्याय मिला है। इसके अलावा, मीडिया के माध्यम से दलित आंदोलन भी मजबूत हुए हैं। भीम आर्मी जैसे संगठनों की गतिविधियों को मीडिया ने व्यापक कवरेज दी, जिससे दलित समाज के लिए आवाज उठाने वाले संगठनों को ताकत मिली है। इससे दलित समाज में आत्म-सम्मान और जागरूकता भी बढ़ी है और वे अपने अधिकारों के लिए अधिक सशक्त होकर आंदोलन करने लगे हैं।

मीडिया की भूमिका में कई चुनौतियाँ भी हैं। पहली चुनौती है मीडिया का व्यावसायीकरण, जिसके चलते सामाजिक न्याय के मुद्दों को उतनी तवज्जो नहीं मिलती जितनी वाणिज्यिक या राजनीतिक घटनाओं को। इसके अलावा जातीय पूर्वाग्रह मीडिया में भी व्याप्त है, जिससे दलितों के मुद्दों को अक्सर हाशिए पर रखा जाता है। संवैधानिक जवाबदेही के चलते निष्पक्ष भाव से मीडिया को दलितों के खिलाफ हो रही हिंसा की घटनाओं की रिपोर्टिंग को प्रमुखता से प्रस्तुत करना चाहिए। मीडिया को सही रिपोर्ट करने, तथ्यों की निष्पक्ष जाँच करने और समाज में सकारात्मक बदलाव के लिए काम करना होगा। सोशल मीडिया के उदय के साथ, यह भी महत्वपूर्ण है कि स्वतंत्र पत्रकारिता और सत्यापन की प्रक्रियाओं को मजबूत किया जाए, ताकि असत्य या भ्रामक सूचनाओं का प्रसार न हो सके। दलितों के खिलाफ बढ़ती हिंसा एक गंभीर सामाजिक समस्या है जो भारत के विकास और लोकतांत्रिक मूल्य प्रणाली के लिए एक चुनौती बनी हुई है। इस पर प्रभावी रुप से काबू पाने के लिए मीडिया की जिम्मेदारी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। मीडिया को दलितों के मुद्दों को गंभीरता से उठाने, समाज में जागरूकता फैलाने, और न्याय प्रक्रिया में योगदान देने के लिए सक्रिय भूमिका की सख्त दरकार है। तभी हम न्याय आधारित एक समतावादी समाज का निर्माण कर पाएँगे, जहाँ हर नागरिक को अपने संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकारों के साथ जीने का पूर्ण अवसर मिलेगा।

वर्तमान मीडिया को दलितों के खिलाफ होने वाले अत्याचारों को न केवल उजागर करना चाहिए, बल्कि उन्हें समाज के सामने इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए कि पीड़ितों के प्रति सहानुभूति और अपराधियों के खिलाफ जनमत जागृत हो सके। इसके साथ ही मीडिया अपने सामाजिक और नैतिक उत्तरदायित्व को समझते हुए निष्पक्ष और समग्र रिपोर्टिंग करनी होगी। सोशल मीडिया के माध्यम से दलित समाज को अपनी आवाज उठाने का एक नया मंच मिला है, लेकिन मुख्यधारा के राष्ट्रीय मीडिया की सक्रिय और जिम्मेदार भूमिका के बिना समाज में व्यापक बदलाव लाना रेत में नाव चलाने जैसा ही है। अंततः मीडिया, न्याय प्रणाली और समाज के अन्य महत्वपूर्ण अंगों को एकजुट होकर इस जातियगत हिंसा और उत्पीड़न के खिलाफ खड़ा होना होगा। क्योंकि स्वतंत्रता, समानता और न्याय ये तीन मूल्य किसी भी स्वस्थ लोकतंत्र के मूल आधार है।

संदर्भ सूची-

1. परिवहन, विशेष, समाचार पत्र, रविवार, 29 सितंबर, 2024
2. जनसत्ता, 14 अक्टूबर, 2024

सोशल मीडिया पर लोकप्रिय छत्तीसगढ़ी पंथी लोकगीतों के संदेश

रमन दास, डॉ. अमित कुमार

भारत के अन्य हिस्सों की तरह ही छत्तीसगढ़ में भी संत परंपरा रही है। जहाँ पर संतों ने समय-समय पर अपने विचारों, संदेशों एवं आचरणों से आम जनता में नई सामाजिक चेतना जागृत करने का काम किया है। इन्हीं में से एक महान संत शिरोमणि बाबा गुरु घासीदास जी थे। हरिराम पटेल (2025) के अनुसार इनका जन्म 18 दिसंबर 1756 में रायपुर जिले के गिरोधपुरी में हुआ था। आगे चलकर इन्होंने छत्तीसगढ़ में 'सतनाम पंथ' की स्थापना की और सन 1820 से समाज सुधार आंदोलन चलाया। सतनाम पंथ को मानने वालों को सतनामी कहते हैं। गुरु घासीदास जी को 19वीं सदी का महान समाज सुधारक कहा जाता है। उनके प्रमुख सिद्धांतों में जातिगत भेदभाव, जीव हिंसा एवं नशे का विरोध शामिल है। इसके अतिरिक्त मूर्ति पूजा की व्यर्थता एवं महिलाओं का सम्मान भी उनके उपदेशों का प्रमुख हिस्सा रहा है। अहिंसा, व्यसन मुक्ति, सामाजिक एवं नैतिक शुचिता और अनुशासन की सीख भी उनके विचारों से मिलती है।

बलदाऊ राम साहू के अनुसार पंथी गीत, छत्तीसगढ़ी लोकगीत हैं। इसके अन्तर्गत गुरु घासीदास जी के जीवनचरित्र, विचारों एवं संदेशों को गीतों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। 'पंथी' शब्द पंथ से बना है। 'पंथ' शब्द का शाब्दिक अर्थ रास्ता या मार्ग होता है। अर्थात पंथी लोक गीत वे हैं जिन्हें भ्रमणशील साधु-संत स्थान विशेष पर ठहर-ठहर कर जन साधारण को नीति-भक्तिविज्ञान संबंधी संदेश देने के उद्देश्य से सुनाया करते थे। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली समस्त जनता है। जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।'' लोकगीत शब्द अंग्रेजी के 'फोक सांग' का पर्याय माना गया है। वृहद भारती शब्दकोश में (2004) में लोकगीत का अर्थ है गाँव या देहातों में गाये जाने वाले जन साधारण के वे गीत हैं जो परम्परागत रूप से किसी जन समाज में प्रचलित रहते हैं। डॉ. अनिता शुक्ला (2014) के 014) के अनुसार ''लोकगीत का अर्थ 'लोक के गीत' अर्थात् जिन गीतों में लोक अथवा आम जनमानस की संवेदना प्रस्फुटित होती है, उसे लोकगीत कहते हैं।''

साहित्य समीक्षा

सामाजिक चेतना के विकास में पंथी लोकगीतों के महत्व एवं भूमिका पर कम अकादमिक कार्य दिखाई पड़ते हैं। मनीष कुमार कुर्रे (2020) ने सामाजिक चेतना के विकास में पंथी गीतों की भूमिका पर अध्ययन किया। इन्होंने पाया कि छत्तीसगढ़ राज्य आरम्भ काल से ही धार्मिक और सांस्कृतिक साधना का केन्द्र

रहा है। इस प्रदेश में पंथी गीतों ने विशेष ख्याति अर्जित की है। इनसे संबंधित पंथी नर्तकों की छोटी-बड़ी मण्डलियाँ और उनके समर्थ कलाकार बड़ी संख्या में मिलते हैं। पंथी गीत के उत्कृष्ट योगदान से छत्तीसगढ़ देश-विदेश में अपनी लोक कला की श्रेष्ठता के कारण विख्यात हो चुका है। छत्तीसगढ़ में सतनाम पंथ के अनुयायियों ने पंथी गीतों के माध्यम से समाज में विषमता के विरूद्ध निरन्तर मानवीयता एवं बन्धुत्व की भावना के विकास को बल दिया। इसके पीछे बाबा गुरु घासीदास और पंथी गीतों की प्रेरक भूमिका रही है, जो छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना को गतिमान रखती है।

सामाजिक चेतना के विकास में छत्तीसगढ़ के अलवा अन्य प्रदेशों के लोकगीतों का महत्व भी दिखाई पड़ता है। रंजना शर्मा (2019) ने भोजपुरी तथा बांग्ला लोकगीतों में सामाजिक चेतना पर अध्ययन किया है। उन्होंने पाया कि दहेज प्रथा की समस्या के प्रति लोगों को जागरूक करने का प्रयास भोजपुरी लोकगीतों के साथ-साथ बांग्ला लोकगीतों द्वारा भी किया जा रहा है। इसके अलावा भोजपुरी एवं बांग्ला लोकगीतों में समसामयिक समस्याओं की ओर लोक कवियों का ध्यान आकर्षित किया है। इस प्रकार बांग्ला और भोजपुरी लोकगीतों में देश-दुनिया की समस्याओं से लेकर तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा पारिवारिक समस्याएँ भी उभर कर आयी हैं।

डॉ. अर्चना डिमरी (2018) ने भी अपने शोध में पाया कि लोकगीत, व्यक्ति के अंदर सामाजिक चेतना पैदा कर रहे हैं। पर्यावरण एवं संस्कृति के संरक्षण के लिए प्रेरणा स्रोत की भूमिका निभा रहे हैं। इस अध्ययन में सुझाव दिया गया है कि अपने-अपने क्षेत्र के लोकगीतों, लोक बोलियों के संरक्षण की ओर ध्यान दें ताकि सामाजिक व प्राकृतिक जीवन में समरसता बनी रहे। कृष्णैया के. (2018) ने सामाजिक आंदोलनों में लोकगीतों की भूमिका पर अध्ययन करते हुए पाया कि सामाजिक आंदोलनों का सामाजिक परिवर्तन की दिशा में विशिष्ट लक्ष्य होता है। लोकगीत सामाजिक और सांस्कृतिक मुद्दों को संबोधित करते हैं एवं सामाजिक परिवर्तन को सुदृढ़ करने का प्रयास करते हैं। आगे इन्होंने अपने शोध में पाया कि लोकगीतों में प्रत्येक शब्द और छंद सामाजिक समस्या और सामाजिक एकीकरण लाने के लिए राजनीतिक अभिव्यक्तियाँ हैं। लोकगीत ने क्रांतिकारी विचारधारा का प्रसार किया और विशिष्ट लक्ष्य तेलंगाना राज्य के गठन को प्राप्त करने में सफल रहे।

छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का विश्लेषणात्मक अध्ययन कर डॉ. एकता कौशिक और डॉ. इंदिरा शर्मा (2016) ने यह स्पष्ट किया है कि छत्तीसगढ़ लोक साहित्य अत्यंत समृद्ध है। इसकी लोकविधा, लोकगीत तो यहाँ के जन-जन के कंठों में बसी है। पंथी गीत यहाँ का प्रतिनिधि लोकगीत है, जो निर्गुण लोक भजन के रूप में प्रचलित है। गुरु घासीदास जी के महान व्यक्तित्व एवं संदेशों को संचालित करना इनकी प्रमुख विशेषताएँ है।

शोध उद्देश्यः इस शोध का मुख्य उद्देश्य सोशल मीडिया पर लोकप्रिय छत्तीसगढ़ी पंथी लोकगीतों के प्रमुख विषयों का विश्लेषण करना है।

शोध प्रविधि

इस अध्ययन की प्रकृति गुणात्मक है। इसमें गुणात्मक अनुसंधान के तहत विषयगत विश्लेषण विधि का प्रयोग किया गया। शोध उद्देश्य की प्राप्ति हेतु दर्शकों की संख्या, लोकप्रियता और विषयगत प्रासंगिकता के आधार पर यूट्यूब पर उपलब्ध 10 सबसे अधिक लोकप्रिय छत्तीसगढ़ी पंथी लोकगीतों का चयन किया गया। प्रत्येक चयनित गीत के बोलों को लिपिबद्ध कर आगे आवश्यक विश्लेषण किया गया है विश्लेषण के दौरान गीतों के भाव एवं प्रमुख संदेशों को रेखांकित करने का प्रयास किया गया।

शोध परिणाम एवं विश्लेषण विश्लेषण

इस खंड में शोध उद्देश्य के संदर्भ में अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों एवं तथ्यों को प्रस्तुत कर उनका विश्लेषण किया गया है। विश्लेषण के द्वारा चयनित गीतों के प्रमुख संदेशों को सामने लाया गया है।

सोशल मीडिया पर छत्तीसगढ़ी पंथी लोकगीतों के प्रमुख विषयः पिछले एक दशक से सोशल मीडिया पर कई छत्तीसगढ़ी पंथी लोकगीत लोकप्रिय हुए हैं। इन पंथी लोकगीतों के प्रमुख विषयों का विश्लेषण करना इस शोध का प्रमुख उद्देश्य था। चूँकि एक पंथी लोकगीत में एक से अधिक विषय भी हो सकते हैं, अतः उन परिस्थितियों में उन्हें एक से अधिक विषयों में शामिल किया गया। ग्राफ संख्या-1 में सोशल मीडिया पर लोकप्रिय छत्तीसगढ़ी पंथी लोकगीतों के प्रमुख विषयों को चित्रित करता है।

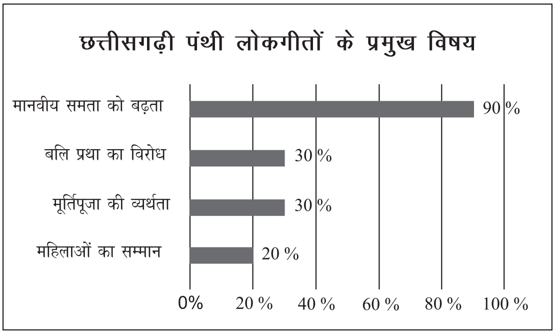

ग्राफः 1 सोशल मीडिया पर लोकप्रिय छत्तीसगढ़ी पंथी लोकगीतों के प्रमुख विषय

जैसा कि पहले भी चर्चा की गई है कि एक पंथी गीत में एक से अधिक विषयों पर संदेश दिये गए हैं। आँकड़ों से प्राप्त जानकारी के अनुसार सोशल मीडिया पर लोकप्रिय छत्तीसगढ़ी पंथी लोकगीतों में सबसे अधिक 90% गीत मानवीय समानता का संदेश देते हैं। 30% गीतों में मूर्तिपूजा की व्यर्थता की चर्चा है तो वहीं 30% गीत बलि प्रथा का विरोध करते हैं। इसी प्रकार 20% गीतों के संदेश महिलाओं के सम्मान से संबंधित रहे हैं।

सोशल मीडिया पर लोकप्रिय छत्तीसगढ़ी पंथी लोकगीतों का प्रमुख संदेश

पंथी लोकगीतों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि इनका मुख्य उद्देश्य शोषण रहित, न्यायपूर्ण एवं खुशहाल समाज की स्थापना है। इनमें निहित संदेशों की चर्चा निम्नवत् है-

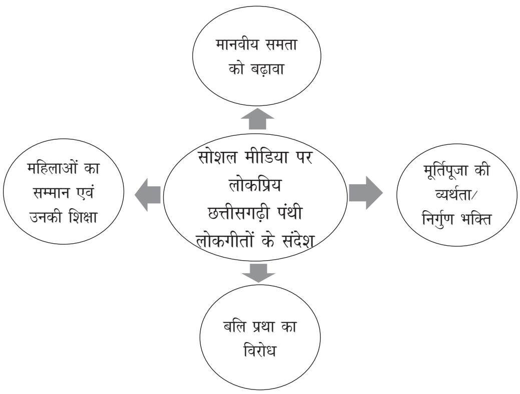

मानवीय समता को बढ़ावा

मनखे मनखे हे एक बरोबर
गुरु के बानी के कतका सुघर
कोनों छोटे, कोनों बड़े कइसे होही जातपात ला गा
ये दुनिया मा आय हवन, एके रद्दा एके घाट ला गा

दास मनोहर द्वारा लिखित और स्वर्णा दिवाकर के स्वर में यह लोकगीत बताता है कि मानव-मानव एक समान हैं, गुरु की वाणी (संदेश) बहुत सुंदर है। जाति एवं वर्ग से कोई कैसे छोटा और बड़ा हो सकता है जबकि सभी इस दुनिया में एक ही तरीके से एक ही धरती पर पैदा हुए हैं।

गुरु बाबा के कहना ला मान लेओं जी
मनखे मनखे एक समान हे, जान लेओं ना
छुवा-छुत ला मन से निकाल देओं ना
मनखे मनखे एक समान हे, जान लेओं ना

सीमा कौशिक (2018) के स्वर में संपूर्ण मानव समाज को संबोधित करते हुए इस पंथी लोकगीत का भाव है कि गुरु घासीदास बाबा के संदेश में विश्वास कर लो और यह समझ लो कि सभी मानव एक समान हैं। साथ ही छुआछूत को मन से पूरी तरह निकाल दो-

मनखे-मनखे ला गुरु एक बताए
सबों के हावे एके अधिकार
हाड़-मांस के सबों के तन हे
रग-रग लाली लहू के धार

गोरेलाल बर्मन (2021) के मधुर स्वर से सुसजित यह पंथी लोकगीत सभी मनुष्यों को समान मानते हुए उनके एक जैसे अधिकारों की बात करता है। सभी लोगों का शरीर एक जैसी हड्डी एवं मांस से बना हुआ है और सभी की नसों में एक ही जैसा लाल रक्त भी प्रवाहित हो रहा है, फिर भेद-भाव कैसा।

उपरोक्त लोकगीतों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि इन पंथी लोकगीतों के द्वारा घासीदास जी के मानवीय समानता के संदेश को लोगों तक पहुँचाने का प्रयास किया जा रहा है। इन पंथी लोकगीतों के माध्यम से जाति एवं वर्ग के आधार पर भेदभाव को नकारते हुए सभी मनुष्यों के समान अधिकारों को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

मूर्तिपूजा की व्यर्थता/निर्गुण भक्ति

पथरा के देवता दीदी हाले नइ तो डेले ओ
न कहु ला देखे दीदी न कहु ला बोले ओ
अइसन देवता ला दीदी हम का मनइबो
गुरु बताए सत के रद्दा वही रद्दा मा जइबो

गोरेलाल बर्मन एवं रतन साहिबा (2018) के स्वर में यह पंथी लोकगीत मूर्तिपूजा की व्यर्थता का संदेश देता है। इसके अनुसार पत्थर से बने देवता न हिलते हैं और न ही किसी को देखते एवं बात करते हैं। इस प्रकार के देवता को दीदी हम क्यों मनाएँगे? अतः निर्गुण भक्तिभाव से हमारे गुरु ने जो मार्ग बताया है उसी पर चलेंगे।

बलि प्रथा का विरोध

सब के जीव मा वही के देवता
बलि प्रथा ला झन देवय नेवता

कैलाश मंडले द्वारा लिखित एवं गोरेलाल बर्मन के स्वर में सुसज्जित यह पंथी लोकगीत सभी जीवों में ईश्वर के ही अंश की बात करता है एवं इसी आधार पर बलि प्रथा के त्याग का संदेश देता है।

महिलाओं का सम्मान

नारी के सम्मान करो जी
शिक्षा के नवा रद्दा गढ़व जी
शोषण सहना शोषण करना
पाप दोनों सतपुरुष के कहना

कैलाश मंडले एवं गोरेलाल बर्मन (2023) का यह लोकगीत महिलाओं के सम्मान का संदेश देता है। उनकी शिक्षा के लिए नए रास्ते तलाशने की बात करता है। यह गीत सतपुरुष अर्थात गुरु घासीदास जी के संदेश, ''शोषण सहना एवं शोषण करना दोनों ही पाप है'' को रेखांकित करता है-

पर नारी हे बेटी समान
सतधरम मा रखो विश्वास
गुरु के बानी गुरु के ज्ञान

मनोज मार्कंडे (2021) के स्वर में यह पंथी लोकगीत गुरु के संदेश एवं ज्ञान पर विश्वास रखते हुए महिलाओं को बेटी समान मानने की बात करता है।

महिलाओं के सम्मान हेतु गुरू घासीदास रचित अनेक पंथी लोकगीत छत्तीसगढ़ी समाज में विद्यमान हैं। महिलाओं की शिक्षा के लिए नए रास्ते तलाशने की भी बात कही गई है साथ उनका स्पष्ट संदेश है कि शोषण सहना और शोषण करना दोनों ही पाप है

निष्कर्ष

पंथी लोकगीत छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक एवं सामाजिक अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम हैं। ये लोकगीत छत्तीसगढ़ के महान संत एवं समाज सुधारक गुरु घासीदास जी की शिक्षाओं एवं संदेशों से प्रेरित होते हैं। इन पंथी लोकगीतों के द्वारा समाज में व्याप्त रूढ़िवाद, कुरीतियों एवं अंधविश्वासों का प्रतिकार किया जाता है। इस तरह छत्तीसगढ़ी पंथी लोकगीतों का समाज में विशेष महत्व है।

इस अध्ययन में शामिल छत्तीसगढ़ी पंथी लोकगीतों के संदेशों से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक चेतना जागृत करने में ये लोकगीत अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। आँकड़ों से प्राप्त जानकारी के अनुसार सोशल मीडिया पर लोकप्रिय छत्तीसगढ़ी पंथी लोकगीतों में सबसे अधिक मानवीय समानता पर चर्चा की गई है। मूर्तिपूजा की व्यर्थता/निर्गुण भक्ति एवं बलि प्रथा का विरोध क्रमशः दूसरे और तीसरे स्थान पर है। महिलाओं की गरिमा एवं सम्मान से संबंधित विषय भी इन लोकगीतों में प्रमुखता से शामिल हैं। जातिगत भेदभाव एवं छुआछूत को नकारते हुए सभी मनुष्यों के समान अधिकारों का संदेश भी इन लोकगीतों में मिलता है। विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि इन पंथी लोकगीतों द्वारा निर्गुण भक्ति भाव को भी

बढ़ावा दिया जा रहा है। इस तरह मूर्ति पूजा की अपेक्षा गुरु घासीदास जी के संदेशों को ज्यादा महत्व दिया जा रहा है। इन लोकगीतों के माध्यम से बलि प्रथा के त्याग के लिए लोगों को प्रेरित करते हुए यह बताया गया है कि सभी जीव में ईश्वर का ही अंश है अतः तुम सभी को एक जैसा ही मानो।

महिलाओं के सम्मान एवं उनकी बेहतरी के लिए गुरु घासीदास जी के संदेशों का वर्णन भी इन पंथी लोकगीतों में दिखाई पड़ता है। पर नारी को बेटी के समान मानने एवं सम्मान देने की बात कही गई है। उनकी शिक्षा के लिए नए रास्ते तलाशने का अनुरोध भी किया गया है। किसी भी प्रकार के शोषण को सहना और किसी भी प्रकार का शोषण करना, दोनों को ही इन लोकगीतों में पाप बताया गया है। यह शोध स्पष्ट करता है कि विभिन्न सामाजिक मुद्दों के प्रति जागरूकता फैलाने में सोशल मीडिया पर लोकप्रिय छत्तीसगढ़ी पंथी लोकगीत प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. बर्मन, जी. (एवीएम गाना,. (2023, 30 नवंबर). सतनाम सतगुरुः सतनाम बोल मनवा (सीजी पंथी गीत) (वीडियो). यूट्यूब. https://www.youtube.com/watch?v=SFDd0lz1Kn0

2. बर्मन, जी. (सृजन म्यूजिक गोरेलाल बर्मन). (2021, 11 दिसंबर), अमर नाम गुरु घासीदासः पंथी गीत (वीडियो). यूट्यूब. https://www.youtube.com/watch?v=siGCnyffkNU

3. बर्मन, जी., और सबिहा, आर. (भक्ति केके कैसेट). (2018, 10 दिसंबर), मंदिरवा मा का करे जइबोः सीजी पंथी गीत (वीडियो). यूट्यूब. https://www.youtube.com/watch?v=AJpg8wdBAH8

4. डिमरी, ए. (2018). उत्तराखंड के लोकगीतः सामाजिक और पर्यावरणीय चेतना के प्रहरी. रिसर्च डायरेक्शन, 6(4).

5. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी 'जनपद' वर्ष-1, अंक-1, पृष्ठ 65

6. दिवाकर, एस. (अंजोर). (2020, 10 दिसंबर), गुरु के बानीः पंथी गीत (वीडियो). यूट्यूब. https://www.youtube.com/watch?v=AFrSNM8ywhY

7. कौशिक, ई., और शर्मा, आई. (2016). छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का विशेषणात्मक अध्ययन, जर्नल ऑफ एडवांसेज एंड स्कॉलरली रिसर्चेस इन एलाइड एजुकेशन, 11(21), आईएसएसएन 2230-7540.

8. कौशिक, एस. (सीमा कौशिक एसके म्यूजिक लेवीना स्टूडियो, (2018, 2 दिसंबर). मनके मनके एक सामानः सीमा कौशिक के मधुर आवाज में (वीडियो). यूट्यूब. https://www.youtube.com/watch?v=jjcPR9b4xHg

9. कृष्णैया, के. (2018). सामाजिक आंदोलनों में लोक गीतों की भूमिकाः भारत में अलग तेलंगाना राज्य गठन पर एक अध्ययन, यूरोपियन जर्नल ऑफ मल्टीडिसप्लनेरी स्टडीज, 3(2).

10. लोकभारती वृहद प्रामाणिक हिन्दीकोश, 11वाँ संस्करण 2004, लोकभारती पृष्ठ 814

11. कुर्रे, एम. के. (2020). सामाजिक चेतना के विकास में पंथी गीतों की भूमिका (छत्तीसगढ़ के विशेष संदर्भ में). रचनाकार. https://www.rachanakar.org/2020/01/blog-post_98.html#googlevignette

12. मार्कंडे, एम. (सीजी प्रीतम सिरमौर). (2021, 22 दिसंबर), सत के परमानः गुरु के बानी गुरु के ज्ञान (सत्संगम पंथी दल बागतरई आरजेएन) (वीडियो). यूट्यूब. https://www.youtube.com/watch?v=-FU6_jeQ7p4

13. पटेल, एच. आर. (2025). छत्तीसगढ़ विशिष्ट अध्ययन (खंड 2, 13 वां संस्करण). एच. आर. प्रकाशन. आईएसबीएन 978-93-341-7005-4.

14. साहू, बी. एस. (n.d). छत्तीसगढ़ के लोकगीतों का सामाजिक संदर्भ, प्रयागराजः जी. एच. पब्लिकेशन.

15. शर्मा, आर. (2019, दिसंबर). भोजपुरी और बंगाली लोकगीतों में सामाजिक चेतना. हेरिटेज, 6.

16. शुक्ला, ए. (2014). छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन (पृष्ठ 55).

स्वास्थ्य संचार उपकरण के रूप में सोशल मीडिया फेसबुक पर हरियाणा की चिरायु आयुष्मान भारत योजना का एक अध्ययन

सुरक्षा यादव, डॉ. पद्मिनी जैन

सार

डिजिटल युग में सोशल मीडिया एक शक्तिशाली संचार उपकरण बन गया है, खासकर स्वास्थ्य के क्षेत्र में। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार स्वास्थ्य में संपूर्ण मानसिक, शारीरिक और सामाजिक कल्याण शामिल है। यह संगठन महिलाओं और पुरुषों की देखभाल के लिए समय पर उचित पहुँच को बढ़ावा देता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार 2018 में 15 वर्ष से कम उम्र के 6.2 मिलियन बच्चों की मृत्यु हुई और 2017 में प्रसव कालीन जटिलताओं के कारण 0.29 मिलियन से अधिक में महिलाओं की मृत्यु हुई है मृत्यु दर में सुधार करने के लिए भारतीय व हरियाणा सरकार ने अनेक योजनाओं का विमोचन किया है जिसमें चिरायु आयुष्मान भारत योजना भी एक है। आज के डिजिटल युग में योजनाओं की जानकारी साझा करने के लिए सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का उपयोग विस्तृत स्तर पर किया जा रहा है। सरकार के जनसंपर्क अधिकारी विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे फेसबुक, इंस्टाग्राम, व्हाट्सऐप द्वारा लोगों तक विभिन्न योजनाओं की जानकारियाँ साझा कर रहे है। इस शोध प्रस्ताव का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि चिरायु आयुष्मान योजना स्वास्थ्य संचार के लिए फेसबुक का उपयोग किस प्रकार करती है अथवा जागरूकता बढ़ाने व लाभार्थियों को शामिल करने और स्वास्थ्य लाभों को बढ़ावा देने में सरकार अपनी सोशल मीडिया रणनीतियों का उपयोग किस प्रकार करती है।

मुख्य शब्दः स्वास्थ्य संचार, सोशल मीडिया, फेसबुक, हरियाणा, चिरायु आयुष्मान भारत योजना, संचार उपकरण

प्रस्तावना

योजना की जानकारी

चिरायु भारत योजना- हरियाणा सरकार की एक स्वास्थ्य बीमा योजना है जिसे विशेष रूप से गरीब परिवारों सरकार का स्वास्थ्य सेवा कवरेज तक पहुँच प्रदान करने के लिए डिजाइन किया गया है। भारत सरकार की प्रमुख योजना आयुष्मान भारत प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना का उद्देश्य सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज प्राप्त करना है। चिरायु योजना को हरियाणा में आयुष्मान भारत के लाभों को व्यापक लोगों तक पहुँचाने के लिए शुरू किया गया था। चिराय आयुष्मान भारत योजना हरियाणा सरकार की एक ऐसी स्वास्थ्य बीमा योजना है जिसके अंतर्गत प्रत्येक लाभार्थी को अस्पताल में भर्ती होने के लिए प्रति परिवार प्रति वर्ष 5 लाख रुपये तक का स्वास्थ्य सुविधा सरकार द्वारा निःशुल्क प्रदान की जाती है।

नकदरहित सेवाएँ

योजना में सरकारी और निजी अस्पतालों में लाभार्थियों को धन का उपयोग किए बिना मुफ्त इलाज मिलता है। उपचार कवरेज में कैंसर, हृदय शल्य चिकित्सा, अंग प्रत्यारोपण और अन्य व्यापक उपचारों सहित गंभीर चिकित्सा शामिल है।

चिरायु योजना के माध्यम से हरियाणा सरकार ने आयुष्मान भारत की पहुँच को और अधिक व्यापक बनाया है, जिसमें सालाना 3 लाख तक कमाने वाले परिवार शामिल हैं। इस बदलाव की बदौलत राज्य की आर्थिक रूप से वंचित आबादी की अब स्वास्थ्य सेवा तक पहुँच आसान हुई है।

अध्ययन का महत्व

1. **डिजिटल माध्यमों की भूमिका**

- इस अध्ययन से यह समझने में मदद मिलेगी कि फेसबुक जैसे सोशल मीडिया प्लेटफार्म स्वास्थ्य योजनाओं के प्रचार और जागरूकता में कैसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं?

2. **स्वास्थ्य योजनाओं की पहुँच**

- हरियाणा की चिरायु आयुष्मान भारत योजना के फेसबुक पेज की विषयवस्तु का विश्लेषण यह दर्शाएगा कि योजना की जानकारी कितने व्यापक रूप से जनता तक पहुँच रही है।

3. **संचार प्रभावशीलता का मूल्यांकन**

- अध्ययन यह आकलन करेगा कि सोशल मीडिया प्रभावी रूप से लक्षित समूहों (विशेषकर ग्रामीण एवं कमजोर वर्गों) तक अपनी पहुँच बढ़ाने में सक्षम है या नहीं।

4. **स्वास्थ्य जागरूकता**

- फेसबुक के माध्यम से लोक स्वास्थ्य योजनाओं के प्रति लोगों में जागरूकता बढ़ाई जा सकती है, विशेष रूप से महिलाओं और गरीब वर्गों के बीच।

5. **जनसंवाद और प्रतिक्रिया**

- सोशल मीडिया लाभार्थियों की प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण योजना की सफलता और कमियों का मूल्यांकन करने में सहायक हो सकता है।

6. **पॉलिसी निर्माताओं के लिए दिशा-निर्देश**

- यह अध्ययन स्वास्थ्य योजनाओं की डिजिटल रणनीति को मजबूत करने और भविष्य में बेहतर लोक स्वास्थ्य संबंधी नीतियों की रचना करने में सहायक होगा।

अध्ययन का क्षेत्र

1. **मीडिया अध्ययन और स्वास्थ्य संचार**

- स्वास्थ्य संचार में सोशल मीडिया की भूमिका का विश्लेषण इस अध्ययन का मुख्य एव लक्ष्य है।

2. **स्वास्थ्य और नीति अध्ययन**

- स्वास्थ्य योजनाओं की पहुँच, जागरूकता और प्रभावशीलता पर इस अध्ययन का क्या योगदान होगा।

3. सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग

- स्वास्थ्य योजनाओं में सूचना प्रौद्योगिकी और संचार के उपयोग का मूल्यांकन

4. राजनीति और प्रशासनिक संचार

- यह अध्ययन सरकार द्वारा डिजिटल प्लेटफार्म पर स्वास्थ्य योजनाओं की संचार रणनीति का विश्लेषण करेगा।

शोध उद्देश्य

1. चिरायु आयुष्मान भारत योजना के फेसबुक पेज द्वारा नियोजित सामग्री का गुणात्मक विश्लेषण करना।
2. फेसबुक पेज पर लाभार्थियों की सहभागिता का मूल्यांकन करना।
3. योजना के बारे में जागरूकता और प्रचार रणनीतियों को समझने के लिए जनसंपर्क अधिकारी का साक्षात्कार लेना।

शोध के प्रश्न

1. फेसबुक पेज पर साझा की गई सामग्री से प्राप्त थीम की विषयवस्तु का अध्ययन करना।
2. लाभार्थीयों द्वारा की गई गतिविधियाँ (लाइक, शेयर, कमेंट) का विश्लेषण करना।
3. योजना से संबंधित जानकारी, प्रचार माध्यमों और जनसंपर्क अभियानों के दृष्टिकोण को समझना।

साहित्य की समीक्षा

भाटिया, पी.एस., और वालिया, सी. के. (2021) ''स्वास्थ्य संदेश संप्रेषित करने में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का महत्व'' शोध-पत्र मीडिया अभियानों और विज्ञापनों के माध्यम से जनता को स्वास्थ्य कार्यक्रमों, नीतियों, पहलों और संसाधनों के बारे में शिक्षित करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से संबंधित ऑकड़े प्रस्तुत करता है। अध्ययन का उद्देश्य आबादी के बीच स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों के बारे में जागरूकता के स्तर का आकलन करना और जालंधर राज्य के ग्रामीण और शहरी दोनों निवासियों के साथ संचार के सबसे प्रभावी साधनों का पता करना है।

गहलोत, आर., और जॉन, एन. (2023) ''समाचार पत्रों में अस्मिता योजना की कवरेज और जनसंचार माध्यमों की भूमिका का अध्ययन'' शोध पत्र योजना के कार्यान्वयन में जनसंचार माध्यमों की भूमिका का पता लगाता है।

पांडे, ए.के., शर्मा, ए., और श्रीवास्तव, ए. (2022) ''भारत में स्वास्थ्य जागरूकता और सरकारी योजनाएँ बिहार राज्य का एक अध्ययन'' शोध से हमें पता लगा कि भारत सरकार की स्वास्थ्य योजनाओं के संदेश जनता तक पहुँचाने में वैचारिक नेता की कितनी अहम भूमिका है।

कोठारी, ए., मोहंती, पी.पी., यादव, आर., सिसोदिया, टी., और एससीआईटी, पी. (2016) ''भारत सरकार की ग्रामीण विकास योजनाओं में सोशल मीडिया के उपयोग का एक अध्ययन'' शोध पत्र के अनुसार भारत सरकार ने सोशल मीडिया के माध्यम से अपनी विकास योजनाओं के बारे में जन जागरूकता बढ़ाने

के प्रयास शुरू किये हैं जिनका उद्देश्य यह जाँचना है कि भारत में चल रही ग्रामीण विकास योजनाओं में संचार के प्रति जागरूकता और पहुँच को प्रभावित करने में सोशल मीडिया की क्या भूमिका है।

सिंह, जी., लथमंगेश्वरी, सी., कांत त्यागी, के., और यादव, सी. ''आयुष्मान भारत योजना के बारे में जागरूकता बढ़ाने में जनसंचार माध्यमों की भूमिका एक अध्ययन'' शोध-पत्र मीडिया द्वारा स्वास्थ्य साक्षरता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विश्व स्तर पर स्वास्थ्य साक्षरता और स्वास्थ्य जागरूकता को बढ़ाने के लिए स्वास्थ्य केंद्रित प्रसारण चैनल स्थापित किये गए हैं। इस पत्र में शोधकर्ताओं द्वारा सिफारिश की गई है कि भारत सरकार को आयुष्मान भारत योजना के तहत पंजीकरण के लाभों के बारे में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में जनता के बीच जागरूकता बढ़ाने के लिए पहल करनी चाहिए।

स्मिथ, जे., और जोन्स, ए. (2018) ''योजनाओं के बारे में जनता की धारणा एक मीडिया विश्लेषण'' अध्ययन इस बात की जाँच करता है कि मीडिया में योजनाओं को कैसे चित्रित किया जाता है और यह चित्रण लोक धारणा को कैसे प्रभावित करता है। अध्ययन, मीडिया में योजनाओं की रूपरेखा और जनता की राय पर इसके प्रभाव को समझने के लिए समाचार लेखों और सोशल मीडिया पोस्ट की जानकारी एकत्रित करने के लिए विषय वस्तु विश्लेषण पद्धति का उपयोग करता है। निष्कर्षों से पता चलता है कि मीडिया कवरेज योजनाओं के बारे में लोक धारणा को महत्वपूर्ण रूप से आकार देता है, जिससे उनके प्रति दृष्टिकोण और व्यवहार प्रभावित होता है।

पी के गर्ग, अनु भारद्वाज, अभिषेक सिंह, एस के अहलूवालिया (2013) ने अपने शोध पत्र ''आशा कार्यकर्ता की जागरूकता का मूल्यांकन और ग्रामीण क्षेत्रों में अपने उत्तरदायित्व का पालन करना'' आशा कर्मचारियों की समझ, जागरूकता और उनके कर्तव्यों के निष्पादन का मूल्यांकन करने के लिए किया गया था जो सामुदायिक स्वास्थ्य भूमिकाओं में उनकी प्रभावशीलता में बाधा डालता है। यह अध्ययन प्रसवपूर्व देखभाल, मानसिक स्वास्थ्य के प्रति लोक धारणा जैसे क्षेत्रों में उनकी दक्षता बढ़ाने के लिए बेहतर शैक्षिक कार्यक्रमों की आवश्यकता पर ज़ोर देता है।

नवीना, एन. (2015) ''स्वास्थ्य संदेश संप्रेषित करने में जनसंचार माध्यमों का महत्व एक विश्लेषण'' पत्र में मास मीडिया की भूमिका की बात की गई है कि मास मीडिया ग्रामीण निवासियों और आवश्यक स्वास्थ्य जानकारी के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करता है। शोध के निष्कर्ष से पता चलता है कि रेडियो और टेलीविज़न जैसे प्लेटफॉर्म लक्षित दर्शकों को नए व्यवहार अपनाने या उन्हें महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं।

सैद्धांतिक ढाँचा

एजेंडा-सेटिंग सिद्धांत

1968 के राष्ट्रपति चुनाव पर ''चौपल हिल अध्ययन'' के नाम से ख्यात शोध में मैक्सवेल मैककॉम्ब्स और डोनाल्ड लुईस शॉ ने औपचारिक रूप से एजेंडा-सेटिंग सिद्धांत तैयार किया था। मैककॉम्ब्स और शॉ ने सबसे महत्वपूर्ण चुनाव मुद्दे के बारे में सौ चैपल हिल निवासियों की राय और स्थानीय समाचार मीडिया द्वारा व्यक्त की गई राय के बीच एक महत्वपूर्ण संबंध पाया। मैककॉम्ब्स और शॉ ने समाचार सामग्री में विषयों के महत्व को जनता के विचारों के साथ तुलना करके इस बात का आकलन किया कि मीडिया किस हद तक जनता की राय को प्रभावित करता है। तर्क के अनुसार, मीडिया अपने दर्शकों को यह बताकर बहुत प्रभावित करता है कि उन्हें क्या सोचना चाहिए, बजाय इसके कि वे वास्तव में क्या सोचते हैं।

यह सिद्धांत बताता है कि मीडिया विशेष रूप से समाचार और डिजिटल प्लेटफार्म, लोगों के ध्यान को किसी विषय-विशेष या मुद्दे की ओर कैसे आकर्षित करता है।

मुख्य बिंदु

- **मीडिया एजेंडाः** मीडिया जिन मुद्दों को प्रमुखता देता है, वह जनता के लिए भी महत्वपूर्ण बन जाता है।
- **जनता का एजेंडाः** मीडिया द्वारा चुने गए विषय जनता की सोच और प्राथमिकताओं को प्रभावित करते हैं।
- **स्वास्थ्य संचार में उपयोग**
- इस सिद्धांत के तहत फेसबुक पेज पर चिरायु आयुष्मान भारत योजना से जुड़ी पोस्ट और सामग्री यह निर्धारित करती है कि जनता स्वास्थ्य योजनाओं को कितनी प्राथमिकता देती है।
- मीडिया सामग्री के बार-बार प्रसार से योजनाओं के प्रति जागरूकता और रुचि बढ़ाई जा सकती है।

उपयोग और संतुष्टि सिद्धांत

यह व्यक्तियों पर मीडिया के प्रभाव की जाँच करता है इस बात पर ध्यान केंद्रित करके कि लोग अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए मीडिया का उपयोग कैसे करते हैं और जब वे ज़रूरतें पूरी हो जाती हैं तो वे संतुष्ट महसूस करते हैं। दूसरे शब्दों में, यह सिद्धांत इस बात की खोज करता है कि लोग मीडिया के साथ क्या करते हैं, न कि मीडिया उनके साथ क्या करता है।

यह मैजिक बुलेट थ्योरी के विपरीत है, जो मानता है कि दर्शक निष्क्रिय हैं इसके बजाय यह सिद्धांत उपयोगकर्ता या दर्शकों को केंद्र में रखता है और उनकी सक्रिय भूमिका पर जोर देता है। उपयोग और संतुष्टि सिद्धांत का विकास ब्लूमर और काट्ज़ ने 1974 में किया था। यह सिद्धांत इस बात पर केंद्रित है कि उपयोगकर्ता किसी माध्यम का उपयोग क्यों करते हैं और उन्हें उससे क्या संतुष्टि मिलती है।

मुख्य बिंदु

- **स्वास्थ्य संचार में उपयोग**
- फेसबुक उपयोगकर्ता चिरायु आयुष्मान भारत योजना की जानकारी पाने के लिए इसका उपयोग करते हैं।
- लोग स्वास्थ्य लाभ, पात्रता मानदंड और पंजीकरण प्रक्रिया जैसी जानकारियों के लिए योजना से जुड़ी सामग्री देखते हैं।

सोशल मीडिया सहभागिता मॉडल

यह मॉडल सोशल मीडिया वार्तालाप के विभिन्न घटकों को अवधारणाबद्ध करने में मदद करता है। यह मॉडल बताता है कि सोशल मीडिया पर उपयोगकर्ताओं की सहभागिता का स्तर क्या होता है। यह मॉडल डिजिटल प्लेटफॉर्म पर उपयोगकर्ताओं की भागीदारी को मापने और समझने में सहायक है। इस मॉडल में आम तौर पर निम्नलिखित तत्व शामिल होते हैं:

1. स्व-प्रस्तुतिः जिस तरह से व्यक्ति धीर-धीरे ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर व्यक्तिगत प्रोफ़ाइल बनाते हैं।

2. भागीदारीः सोशल मीडिया पर उपयोगकर्ता जिन गतिविधियों में शामिल होते हैं, जैसे कि देखना, पोस्ट करना, टिप्पणी करना, चर्चा करना और सहयोग करना।

3. लाभ और पुरस्कारः वे कारक जो उपयोगकर्ताओं को सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म अपनाने और उनका उपयोग जारी रखने के लिए प्रेरित करते हैं।

स्वास्थ्य संचार में उपयोगः

- चिरायु आयुष्मान भारत योजना के फेसबुक पेज पर कितने लोग पोस्ट को लाइक, शेयर और टिप्पणी कर रहे हैं, यह इसकी प्रभावशीलता को दर्शाता है।
- अधिक सहभागिता का अर्थ है कि योजना लोगों तक पहुँच रही है और उनकी रुचि बढ़ा रही है

कार्यप्रणाली

विषयवस्तु विश्लेषण

यह एक मात्रात्मक अनुसंधान पद्धति है जिसमें डेटा संग्रह के लिए विषयवस्तु-विश्लेषण पद्धति का उपयोग किया गया है। इस अध्ययन में हरियाणा राज्य की आयुष्मान भारत योजना के फेसबुक पेज को नमूने के रूप में चुना गया है। नमूने के रूप में हरियाणा के फेसबुक पेज को चुनने का कारण यही है कि शोधकर्ता को आयुष्मान भारत योजना के अलावा किसी भी योजना पर कोई पेज नहीं मिला।

साक्षात्कार

यह एक गुणात्मक अनुसंधान पद्धति है जिसमें डेटा संग्रह के लिए एक उपकरण के रूप में साक्षात्कार पद्धति का उपयोग किया गया है। इस अध्ययन के लिए हरियाणा राज्य से विभिन्न जनसम्पर्क अधिकारियों का साक्षात्कार लिया गया है।

नमूना चयन

विषयवस्तु विश्लेषण के लिए नवम्बर 2022 से जुलाई 2024 की समयावधि की सभी पोस्ट का विश्लेषण किया गया जिसकी संख्या में 727 है। उद्देश्यपूर्ण नमूनाकरण द्वारा को हरियाणा के विभिन्न जिलों से कुल पाँच जनसम्पर्क अधिकारियों साक्षात्कार के लिए चयन किया गया है।

परिणाम

कुल 727 पोस्ट के विश्लेषण पश्चात शोधकर्ता द्वारा उन्हें पाँच थीमों में विभाजित किया।

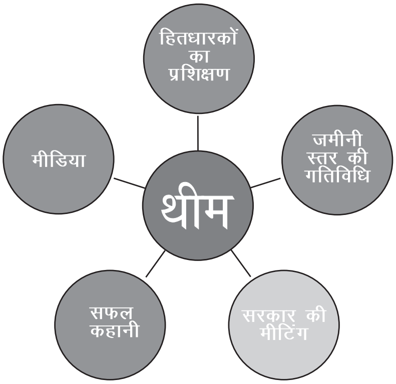

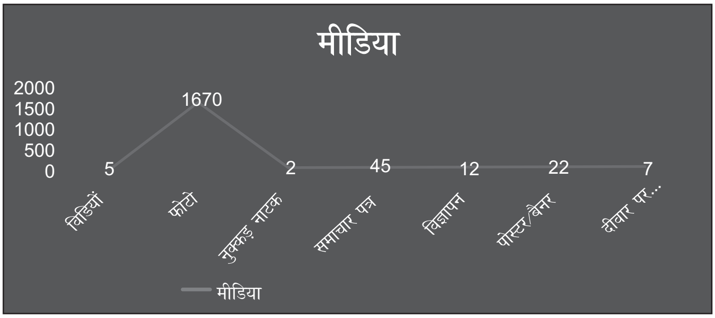

तालिका 1

तालिका 1 में प्रस्तुत डेटा स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि मीडिया में सबसे ज्यादा पोस्ट चित्रों की है जो कि संख्या में 1670 हैं एवं समाचार पत्र की कटिंग की पोस्ट कुल 45 और नुक्कड़ नाटक की पोस्ट सबसे कम कुल दो ही पोस्ट हैं।

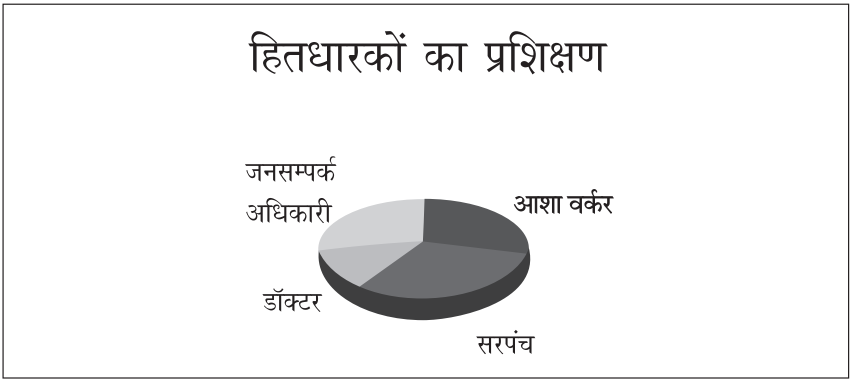

तालिका 2

तालिका 2 से स्पष्ट है कि हितधारकों के प्रशिक्षण में आशा कार्यकर्ता, सरपंच व जनसम्पर्क अधिकारी के प्रशिक्षण की पोस्ट लगभग बराबर है क्योंकि किसी योजना के कार्यान्वयन के लिए वैचारिक नेता महत्वपूर्ण रोल अदा करते हैं।

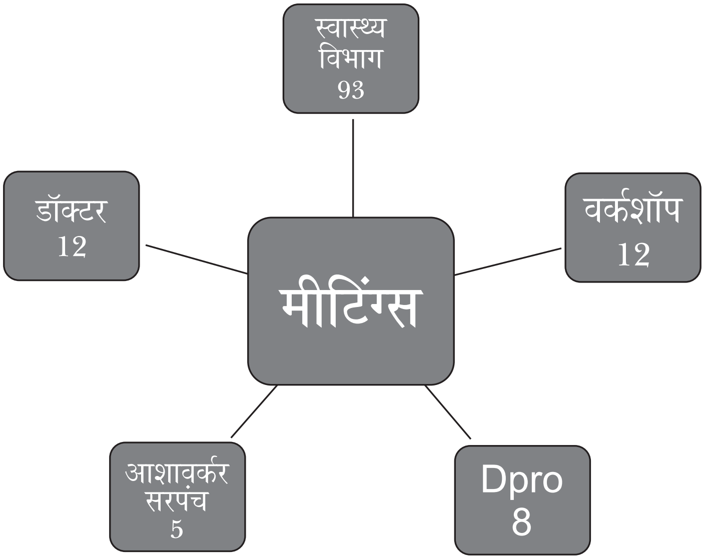

तालिका -3

तालिका 3 में मीटिंग्स की पोस्ट का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है जिसमें स्वास्थ्य विभाग की पोस्ट सबसे ज्यादा थी जो कि मीटिंग्स की कुल पोस्ट का लगभग 70 प्रतिशत है एवं 12 पोस्ट वर्क्शाप, डॉक्टर की मीटिंग व सबसे कम आशा वर्कर और सरपंच की मीटिंग की थी।

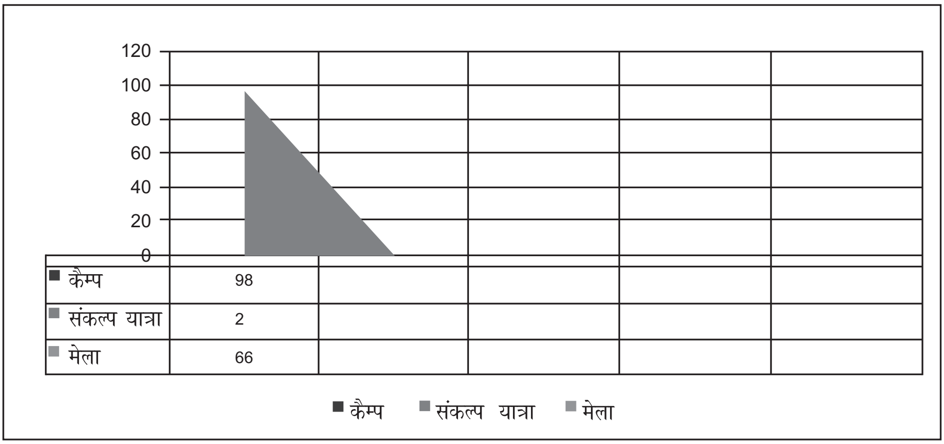

तालिका 4

तालिका 4 का डेटा जमीनी स्तर की गतिविधियों का विवरण प्रस्तुत करता है, जिसमें मेला, कैंप और संकल्प यात्रा से संबंधित विभिन्न पोस्ट शामिल हैं। इन गतिविधियों में हेल्थ कैंप की पोस्ट सबसे अधिक है। जिनकी कुल संख्या 98 है।

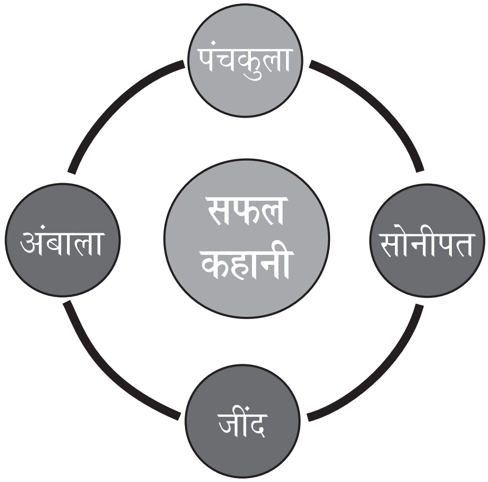

तालिका 5

तालिका 5 से स्पष्ट है कि सफल कहानियों से संबंधित कुल 112 पोस्ट थीं जिनमें विभिन्न जिलों के लाभार्थियों द्वारा उपचार प्राप्त करने की जानकारी साझा की गई थी। हालाँकि इनमें से अधिकांश पोस्ट अंबाला, सोनीपत, जींद और पंचकुला जिलों से संबंधित थीं।

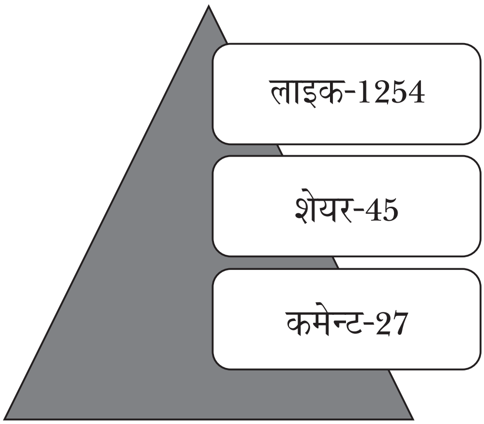

तालिका 6

तालिका 6 उपयोगकर्ता सहभागिता (यूजर इंटरेक्शन) का विवरण प्रस्तुत करती है, जिसमें लाइक, शेयर और टिप्पणी संबंधी डेटा को संख्यात्मक रूप में दिखाया गया है। लाइक की संख्या सबसे अधिक है, जो कुल 1254 है, हालाँकि अधिकांश पोस्ट पर केवल 1 या 2 लाइक ही थे। शेयर की कुल संख्या 45 थी, जबकि टिप्पणी की संख्या 27 रही, जिनमें से केवल 2 टिप्पणी नकारात्मक (नेगेटिव) थीं।

जनसम्पर्क अधिकारी का साक्षात्कार

शोधकर्ता ने अपने अध्ययन के लिए विभिन्न जनसम्पर्क अधिकारियों का साक्षात्कार लिया जिसमें चार महत्वपूर्ण प्रश्नों द्वारा उचित उत्तर लेने का प्रयास किया गया।

प्रश्न 1. योजना की जानकारी

''योजना की जानकारी जन-जन तक पहुँचाने के लिए विभिन्न मीडिया माध्यमों का उपयोग किया जाता है, जैसे प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक और सोशल मीडिया। हालाँकि, सोशल मीडिया का उपयोग अपेक्षाकृत कम किया जाता है। इसके साथ ही बस, टेम्पो और गाँव की दीवारों पर विज्ञापन भी योजना के प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका निभाते हैं। इन स्थानों पर विज्ञापन लगाने से योजना की जानकारी व्यापाक आबादी तक आसानी से पहुँचाई जा सकती है।''

प्रश्न 2. फेसबुक पेज पर ऊपर से नीचे (top to down approach) का दृष्टिकोण?

''जनसंपर्क अधिकारी ने प्रतिक्रिया देते हुए कहा कि हमें सरकार द्वारा सबसे पहले योजना के संदेश को जनता तक पहुँचाने का निर्देश दिया जाता है। इसके लिए हम मुख्य रूप से मैजिक बुलेट थ्योरी का उपयोग करते हैं, जिसमें योजना के संदेश को सीधे और प्रभावी रूप से जनता के मस्तिष्क में संप्रेषित किया जाता है। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि योजना का संदेश सरल, स्पष्ट और व्यापक रूप से जन-जन तक पहुँचे।''

प्रश्न 3. सोशल मीडिया का उपयोग करने में किसी प्रकार की परेशानी?

''सोशल मीडिया का उपयोग सबसे कम किया जाता है, जिसका मुख्य कारण सोशल मीडिया से संबंधित तकनीकी ज्ञान की कमी है। इसके अलावा ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट की सीमित पहुँच, डिजिटल साक्षरता का अभाव और प्रशिक्षित कर्मियों की कमी भी सोशल मीडिया के प्रभावी उपयोग में बाधा उत्पन्न करती है। इन चुनौतियों के कारण योजना के संदेशों को सोशल मीडिया के माध्यम से व्यापक स्तर पर प्रसारित करने में कठिनाई होती है।''

प्रश्न 4. प्रतिक्रिया के लिए क्या?

''वन-वे उपकरण होने के कारण जनता से प्रतिक्रिया प्राप्त करने में कहीं न कहीं कमी रह जाती है। हालाँकि, अब हम इस कमी को दूर करने के लिए हर संभव प्रयास कर रहे हैं। इसके तहत हम आधुनिक तकनीकों और प्रभावी संचार के माध्यमों को अपनाने की दिशा में काम कर रहे हैं।''

निष्कर्ष

शोध के परिणाम से यह निष्कर्ष निकाला गया कि सरकार द्वारा योजनाओं का प्रोन्नयन तो विस्तृत स्तर पर हो रहा हैं किन्तु उनके प्रचार प्रसार में थोड़ी कमी है। स्वास्थ्य की अनेक योजनाएँ होने के बावजूद शोधकर्ता को केवल आयुष्मान भारत योजना का ही फेसबुक पेज़ मिला जो चिंता का विषय है। शोध की कार्यप्रणाली में विषयवस्तु विश्लेषण से विभिन्न थीम निकले जिसमें पोस्ट भी समय-समय पर थी किन्तु लाइक, शेयर एवं टिप्पणी बहुत कम थीं। ज्यादातर पोस्ट में तो लाइक की संख्या केवल दो ही रही व शेयर तो पर न के बराबर। साक्षात्कार से भी यही स्पष्ट हुआ की उपयोगकर्ताओं के माध्य पारस्परिक वार्तालाप की कमी है। मैजिक बुलेट थ्योरी जिसका इस्तेमाल अभी हो रहा है उसकी जगह उपयोग और संतुष्टि सिद्धांत का प्रयोग करना जरूरी हैं। अधिकारियों को सोशल मीडिया का इस्तेमाल करने के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए अथवा जनता तक इसकी पहुँच को बढ़ाना चाहिए व इसे 'वन वे' उपकरण नहीं अपितु 'टू वे' उपकरण बनाना चाहिए।

शोध परिणामों का निष्कर्ष है कि सरकार द्वारा योजनाओं का प्रोन्नयन तो व्यापक स्तर पर किया जा रहा है, लेकिन उनके प्रचार-प्रसार में अपेक्षित प्रभावशीलता की कमी है। स्वास्थ्य से जुड़ी अनेक योजनाएँ

होने के बावजूद, शोधकर्ता को केवल आयुष्मान भारत योजना का ही फेसबुक पेज मिला जो न केवल चिंता का विषय है बल्कि डिजिटल माध्यमों के सीमित उपयोग को भी दर्शाता है। शोध की कार्यप्रणाली में विषयवस्तु-विश्लेषण के माध्यम से विभिन्न थीम्स की पहचान की गई, जिनमें समय-समय पर पोस्ट साझा की गई थीं। हालाँकि पोस्ट पर पास्परिक वार्तालाप बेहद कम पाया गया। अधिकांश पोस्ट पर लाइक्स की संख्या केवल दो तक ही सीमित थी और शेयर तो लगभग न के बराबर थे। टिप्पणी की संख्या भी बहुत कम थी, जो दर्शाता है कि सोशल मीडिया के जरिए योजनाओं को जन-जन तक पहुँचाने में अपेक्षित सफलता हासिल नहीं हुई है।

साक्षात्कार के दौरान भी यह बात स्पष्ट हुई कि पारस्परिक वार्तालाप की गंभीर कमी है। वर्तमान में मैजिक बुलेट थ्योरी का उपयोग किया जा रहा है, जिसमें संदेश सीधे जनता तक पहुँचाया जाता है। लेकिन आज के डिजिटल और संवादात्मक युग में, इस सिद्धांत की जगह उपयोग और संतुष्टि सिद्धांत का उपयोग करना आवश्यक हो गया है। इस सिद्धांत के माध्यम से जनता की आवश्यकताओं और रुचियों को समझते हुए संवाद स्थापित किया जा सकता है। इसके अलावा, अधिकारियों को सोशल मीडिया के प्रभावी उपयोग के लिए विशेष प्रशिक्षण देना चाहिए ताकि वे इन प्लेटफॉर्म्स का बेहतर तरीके से भरपूर इस्तेमाल कर सकें। जन-जन तक इसकी पहुँच बढ़ाने के लिए डिजिटल साक्षरता को प्रोत्साहित करना भी आवश्यक है। साथ ही, सोशल मीडिया को केवल 'वन-वे' संचार उपकरण के रूप में उपयोग करने के बजाय, इसे 'टू-वे' संवाद उपकरण के रूप में विकसित करना चाहिए। इस बदलाव से न केवल योजनाओं के प्रति जनता की सहभागिता बढ़ेगी, बल्कि योजनाओं की प्रभावशीलता में भी सुधार होगा।

सरकार और जनसंपर्क अधिकारियों को इस दिशा में ठोस प्रयास करने चाहिए ताकि योजनाओं की जानकारी न केवल अधिक व्यापक रुप से फैलाई जा सके बल्कि जनता से फीडबैंक प्राप्त कर उन योजनाओं को और अधिक प्रासंगिक और उपयोगी बनाया जा सके।

सुझाव

नीतिगत सिफारिशें

1. **डिजिटल प्रशिक्षणः** अधिकारियों और कर्मचारियों को सोशल मीडिया प्रबंधन का प्रशिक्षण दिया जाए।
2. **डेटा आधारित रणनीतिः** उपयोगकर्ता पतिकिया का विश्लेषण कर योजना को प्रभावी बनाया जाए।
3. **सामुदायिक संवादः** लाइव सत्र और प्रश्नोत्तर जैसे कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ।

शैक्षिक सिफारिशें

1. **डिजिटल स्वास्थ्य संचार पाठ्यक्रमः** मीडिया और जनसंचार पाठ्यक्रमों में इसे शामिल किया जाए।
2. **अंतरविषयक शोधः** स्वास्थ्य और मीडिया के बीच शोध को बढ़ावा दिया जाए।
3. **कार्यशाला और सेमिनारः** डिजिटल मीडिया और स्वास्थ्य संचार पर नियमित कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ।

सीमाएँ

1. केवल एक ही योजना के फेसबुक पेज का विषयवस्तु विश्लेषण किया गया है।

2. सोशल मीडिया में फेसबुक को ही केवल सम्मिलित किया है।

3. क्षेत्र के सभी जनसम्पर्क अधिकारियों का साक्षात्कार लेना मुश्किल था इसलिए केवल चयनित जनसंपर्क अधिकारियों का ही साक्षात्कार शोधकर्ता द्वारा लिया गया है।

4. चिरायु आयुष्मान भारत योजना के प्रोन्नयन वर्ष नवबंर 2022 से जुलाई 2024 तक की समयावधि की विषय वस्तु विश्लेषण हेतु निर्धारित की गई है।

संदर्भ सूची

Ambarish, Kumar, Rai., Soumiya, Bhattacharjee. (2018). Does Development Lead to Narrowing the Gap in Maternal Health Care Utilization among Social Groups? The Evidences of Haryana. 05(01):213-222. doi: 10.9756/1AJSS/V511/1810019

Bhatia, P. S., & Walia. C. K. (2021). IMPORTANCE OF ELECTRONIC MEDIA IN COMMUNICATING HEALTH MESSAGES: A SURVEY OF JALANDHAR DISTRICT. *Advance and bunovative Research, 4.*

Gahlowt, R., & John, N. (2023). A Study Of Coverage Of Asmita Yojana In Selected Newspapers And The Role Of Mass Media In Its Implementation. *Journal of Namibian Studies: History Politics Culture,* 35, 1643&1650.

Garg, P. K., Bhardwaj, A., Singh, A., & Ahluwalia, S. K. (2013). An evaluation of ASHA worker's awareness and practice of their responsibilities in rural Haryana. *National Journal of Cominunity Medicine,* 4(01), 76&80.

Gopinath, M., Swathi, P., & Devatha, S. (2019). Awareness of Government Hospitals Schemes among Coimbatore People.

Kinan, Prasad. (2014). Strategic Health Communication. 89-101. doi: 10.1007/978-1-4614-9335-8_8

Kothari, A., Mohanty, P. P., Yadav, R., Sisodia, T., & SCIT, P. (2016). A Study of Social Media Usage in Rural Development Schemes of Government of India. *International Journal of Engineering Applied Sciences and Technology,* 2(2), 1-5,

Mohammad, Anwar, Siddique., Anita, Kumari. (2023), Mass Media and Promotion of Women's Health in Capital of Jharkhand. Indian Journal of Mass Communication and Journalism (IJMCJ), 3(2):39-47. doi: 10.54105/ijmej.21068.03021223

Naveena, N. (2015). Importance of mass media in communicating health messages: An analysis. *IOSR J Humanit Soc. Sel, 20*(2), 36-41.

Pandey, A. K., Sharma, A., & Srivastava, A. (2022). A Health Awareness and Govt. Schemes in India: A Study of Bihar State. *European Journal of Molecular & Clinical Medicine (EJMCM)*, 9(09), 2022.

Rajesh, Kumar., Manjet, Kaur, Mehar, Singh., Amanpreet, Kaur., Manmeet, Kaur. (1995). Reproductive health behaviour of rural women.. Journal of the Indian Medical Association, 93(4):129-

Saumya, Pant., Manisha, Pathak&Shelat., Aanchal, Sharma., Pradeep, Krishnatray. (2016). EÛploring Individual, Cultural and Structural Components of Health Communication

Programs: A Gender Integrative Approach. 197-213. doi: 10.1007/978-3&319-33539-11_1

Shalu, Yadav., T., L., Khiamniungan. (2024). Assessing Trends in Women's Reproductive Health and Family Planning in Haryana: Insights from NFHS-4 and NFHS-5. Galore international journal of health science and research, doi: 10.52403/gijhsr.20240210

Singh, G., Lathamangeswari, C., kant Tyagi, K., & Yadav, C. A STUDY ON THE ROLE OF MASS MEDIA IN PROMOTING AWARENESS OF AYUSHMAN BHARAT YOJANA.

Sonal, Katyal. (2018). Patterns of Utilization of Maternal Healthcare Services in Haryana, India. Asia Pacific journal of health management, 13(1) :17. doi: 10.24083/APJHM. V1311.29

Ortiz, R. R., Smith, A., & Coyne-Beasley, T. (2019). A systematic literature review to cxamine the potential for social media to impact HPV vaccine uptake and awareness, knowledge, and attitudes about HPV and HPV vaccination. *Human vaccines & Immunotherapeutics,* 15(7-8), 1465-1475,

Unnikrishnan, B., Rathi, P., Sequeira, R. M., Ran, K. K., Kamath, S., & K. M. A. K. (2020). Awareness and uptake of maternal and child health benefit schemes among the women attending a district hospital in coastal South Indin. Journal of Health Management, 22(1), 14-24.

Verma, R., Dhaka, R., & Agrawal, G. (2018). Beti bachao, beti padhao programme: a right initiative to save the girl child. *International Journal of Community Medicine and Public Health,* 5(6), 2153-2155.

Walia, R. (2018). Critical appraisal of state schemes and programmes for adolescent girls in Haryana. *International Journal of Research in Social Sciences,* 8(5), 773-786.

लेखक परिचय

डॉ. दीपक शर्मा	:	मोतीलाल नेहरू कॉलेज (सांध्य), दक्षिणी परिसर दिल्ली विश्वविद्यालय, मेल- deepaksharma@mlne.du.ac.in मो. 9811424200
डॉ. वैभव उपाध्याय	:	सहायक प्रोफेसर, जनसंचार विभाग, आई. आई. एम. टी ग्रुप ऑफ कॉलेज, अनुज कुमार सिंह ग्रेटर नोएडा, drviabhavupadhayay@gmail.com मो. 9415147731
विवेक कुमार	:	शोध छात्र, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, इग्नू जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, मेल- vvsinghkumar@gmail.com मो. 8299091385
प्रो. मनीष शर्मा	:	प्रोफेसर, मेल- manishsharma86076@gmail.com
डॉ. दीनदयाल	:	सहायक आचार्य, जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, मेल- deendayal@jdm.du.ac.in
डॉ. तुंगनाथ मौआर	:	सहायक आचार्य, राजनीतिक विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, मेल- drtnmauar2023@gmail.com, Mob. 9430545001
डॉ. अभिषेक कुमार मिश्र	:	सहायक आचार्य, (हिंदी) राजकीय विश्वविद्यालय, ढाढ़ा बजुर्ग, हाटा, कुशीनगर मेल- dr.abhishekvats@gmail.com, Mob. 9532809167
कुलदीप कुमार	:	शोधार्थी, बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ
डॉ. रचना गंगवार		एसोसिएट प्रोफेसर, बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ
डॉ. रूपचंद गौतम	:	228/9, मंडोली दिल्ली 110093, मेल- aashuupi@gmail.com मो. 968414275
पूनम कुमारी	:	सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, आई.एम.एस. गाजियाबाद, मेल- punam.kumari@imsuc.ac.in
डॉ. विजेता तनेजा	:	एसोसिएट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, दिल्ली इंस्टिट्यूट ऑफ हायर एजूकेशन, ग्रेटर नोएडा, मेल- vijeta@jimsnoida.org
इरम अलि अहमद	:	शोध छात्रा, भाषा विज्ञान विभाग, कला संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, काशी

नितेश उपाध्याय	:	शोधार्थी, भारतीय भाषा केंद्र, जवाहर नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067
शालू	:	शोधार्थी, हिंदी विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, जिला- कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश-176215 मेल- shalubabbar@gmail.com
डॉ. रहीम मियाँ	:	सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग बानरहाट कार्तिक उराँव हिंदी गवर्नमेंट कॉलेज, बानरहाट, जलपाईगुड़ी-735203 (पं. बंगाल)
डॉ. हंसराज सुमन	:	एसोसिएट प्रोफेसर, अरबिंदो कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, अरबिंदो मार्ग, नई दिल्ली-110016
रमन दास	:	शोधार्थी, पत्रकारिता एवं नवीन मीडिया अध्ययन विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली
डॉ. अमित कुमार	:	सह आचार्य, पत्रकारिता एवं नवीन मीडिया अध्ययन विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली
सुरक्षा यादव	:	शोधार्थी, पत्रकारिता एवं नवीन मीडिया अध्ययन विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली
डॉ. पद्मिनी जैन	:	सह आचार्य, पत्रकारिता एवं नवीन अध्ययन विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

यहाँ से काटिए

संवाद पथ-सदस्यता फॉर्म

नाम : ....

डाक का पता :..

ईमेल : .... मोबाइल : ....

RTGS का विवरणः ....

सदस्यता शुल्क

प्रति अंक	:	रुपए 40/- (डाक व्यय रुपए 35/- अतिरिक्त)
व्यक्तिगत वार्षिक	:	रुपए 150/- (डाक व्यय रुपए 100/- अतिरिक्त)
संस्थागत वार्षिक	:	रुपए 250/- (डाक व्यय रुपए 100/- अतिरिक्त)
विदेश में	:	प्रति अंक $ 10 वार्षिक $ 40

निर्धारित सदस्यता शुल्क मनीऑर्डर, डी.डी. के द्वारा सचिव, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल के नाम से संस्थान के पते पर भेजा जा सकता है।

ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :—

Name of Beneficiary	:	Sachiv, Kendriya Hindi Shikshan Mandal
A/C No.	:	0346101005057
Name of Bank and Branch	:	Canara Bank, SDA branch, New Delhi
IFSC Code	:	CNRB0000346 MICR : 110015013

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें —

क्षेत्रीय निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली केंद्र

बी-26ए कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, शहीद जीत सिंह मार्ग, नई दिल्ली-110016

ईमेल - Samvadpathkhsdelhi@gmail.com, khsdelhi16@gmail.com

मो. 9871681823

रचनाकारों से निवेदन

संवाद पथ में प्रकाशन हेतु पत्रिका के अनुरूप केवल जनसंचार एवं पत्रकारिता से संबंधित रचनाएँ आमंत्रित हैं। लेखक अपनी रचनाएँ (सार सहित) मानक हिंदी और यूनिकोड में टंकित कर Samvadpathkhsdelhi@gmail.com पर भेजने की कृपा करें। अन्य फॉण्ट में लेख भेजने पर उसके साथ फॉण्ट भी भेजें। अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी।

मानदेय हेतु रचनाकारों अपने आलेख शोध पत्र के साथ पत्राचार का पता, मोबाइल नं., बैंक खाता संख्या, व शाखा का नाम, IFSC कोड आदि की जानकारी उपलब्ध कराना अपेक्षित है।

महत्वपूर्ण- संवाद पथ की वार्षिक सदस्यता राशि ₹150/- (डाक व्यय ₹100/- अतिरिक्त) की कटौती रचनाकारों के मानदेय से कर ली जाएगी।

नोट्स

नोट्स

नोट्स

नोट्स

केंद्रीय हिंदी संस्थान से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाएँ

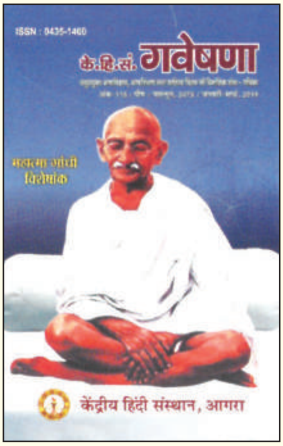

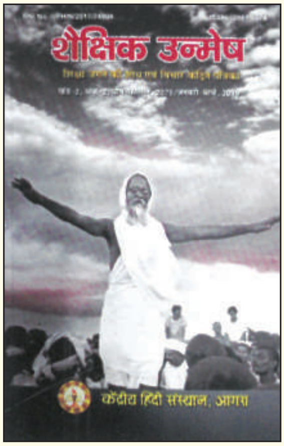

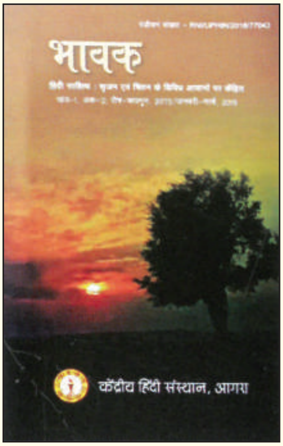

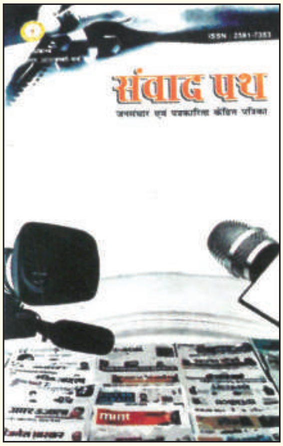

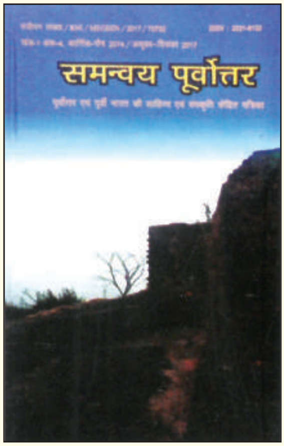

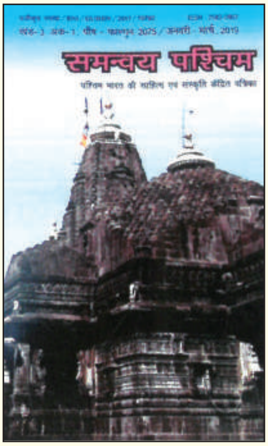

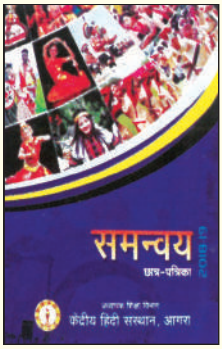

ISSN : 2581-7353

RNI NO. DEL HIN/2018/75997

केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली केंद्र

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

मुद्रक : एजुकेशनल स्टोर्स गाजियाबाद (उ.प्र.) तथा प्रकाशक : डॉ. अपर्णा सारस्वत क्षेत्रीय निदेशक द्वारा सचिव, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा के पक्ष में एस-5 बुलंदशहर रोड़ इण्डस्ट्रीयल एरिया साईट-1, गाजियाबाद-201009 मुद्रण स्थल से मुद्रित तथा केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली केंद्र, बी-26ए, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, शहीद जीत सिंह मार्ग, नई दिल्ली-110016 प्रकाशन स्थल से प्रकाशित, संपादक डॉ. योगेन्द्र कुमार